सप्तसरोज

लेखक—
सेवासदन, प्रेमपचीसी, शेखसादी, प्रेमाश्रम, संग्राम,
प्रेमपूर्णिमा आदिके रचयिता
"स्व० प्रेमचन्द"

— ❀ —

प्रकाशक—
हिन्दी पुस्तक एजेंसी
ज्ञानवापी, काशी

सोलहवीं बार] १९३८ [मूल्य ॥)

प्रकाशक
श्री बैजनाथ केडिया
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
ज्ञानवापी-काशी ।

शाखाएँ—
२०३ हरिसन रोड कलकत्ता
गनपत रोड लाहौर
दरीबाकलां दिल्ली
बांकीपुर पटना

मुद्रक—
रामशरण सिंह यादव
वणिक प्रेस,
साक्षीविनायक, काशी ।

पहले संस्करणकी

भूमिका

— ❀ —

उर्दू-ससारके हिन्दू-महारथियोंमे प्रेमचन्दजीका स्थान बहुत ऊँचा है। अनेक नामोंसे आपकी पुस्तकें उर्दू-ससारकी शोभा बढ़ा रही हैं। उर्दू-पत्रोंने आपकी रचनाओंकी मुक्तकठसे प्रशसा की है।

हर्षकी बात है कि मातृभाषा हिन्दीने कुछ दिनोंसे आपके चित्तको आकर्षित किया है। प्रेमचन्दजीने पूजनार्थ नागरी-मन्दिरमें प्रवेश किया है और माताने हृदय लगाकर अपने इस यशशाली प्रेमपुत्रको अपनाया है। इन प्रतिभाशाली लेखक महानुभावने इतनी जल्दी हिन्दी ससारमें इतना नाम कर लिया है कि आश्चर्य होता है। आपकी कहानियां हिन्दी ससारमें अनूठी चीज है। हिन्दीकी पत्र पत्रिकाएं आपके लेखोंके लिये लालायित रहती हैं।

कुछ लोगोंका विचार है कि आपकी गल्पें साहित्यमार्त्तण्ड रवीन्द्र बाबूकी रचनासे टक्कर लेती है। ऐसे विद्वान और प्रसिद्ध लेखकके विषयमें विशेष कुछ लिखना अनावश्यक और अनुचित होगा।

अहरौला, आजमगढ़
८वीं जून, १९१७ ई०

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

विषय-सूची

—+ o'+—



निवेदन

—※—

आज हम "सप्तसरोज" का सोलहवाँ संस्करण हिन्दी संसारके सम्मुख रख रहे हैं। हमें यह कहते हर्ष होता है कि हिंदी-प्रेमी पाठकोंने इसकी कहानियाँ बहुत पसन्द कीं। पत्र पत्रिकाओंके सम्पादक और अन्य हिन्दीके विद्वानोंने भी इसकी बहुत सराहना की। अँगरेजी 'माडर्न रिव्यू' और 'लीडर' सरीखे पत्रोंने भी तारीफ करनेमें कसर नहीं की, लेकिन इस पुस्तकपर हमें सबसे अधिक महत्वकी सम्मति—निष्पक्ष सम्मति—श्रीमान् शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय महोदयसे मिली है। उस सम्मतिपर सभी हिन्दी-प्रेमियोंको गर्व होना चाहिये।

हमें इस सत्यके स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये कि हिन्दीमें अधिकांश उपन्यास और गल्पकी पुस्तकें बंगभाषाकी जूठन हैं। हिन्दीके गल्प-संसारमें कोई ऐसी महत्व-शाली रचना नहीं थी, जिसे बङ्गभाषाका एक इतना महान् और प्रतिभाशाली विद्वान सराह सके। अब हम थोड़ेमें आपको शरत् बाबूका परिचय कराकर सप्तसरोजपर उनकी सम्मतिका भावार्थ सुना देते हैं। इस समय शरत् बाबू बङ्गभाषाके उपन्यास और गल्प संसारमें सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। सर जगदीशचन्द्र बोस, और सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे विद्वानोंने आपकी रचनाओं-की असीम प्रशंसा की है। अबतक बङ्गभाषामें आपकी कितनी ही पुस्तकें निकली हैं और निरन्तर निकलती जा रही हैं। आपके ग्रन्थोंके पाठकोंकी संख्या बहुत अधिक है।

अब आपकी सम्मतिका भावार्थ सुनिये—

"गल्पे सचमुच बहुत उत्तम और भावपूर्ण हैं। रवीन्द्र बाबू के साथ इनकी तुलना करना अन्याय और अनुचित साहस है, पर और कोई भी बँगला लेखक इतनी अच्छी गल्पे लिख सकता है या नहीं, इसमे सन्देह है।"

एक सम्मति और उल्लेख-योग्य जान पड़ती है। अनेक पूर्वीय भाषाओंके धुरन्धर विद्वान् मि० आर० पी० ड्यूहर्स्ट एम० ए०, एफ० आर० जी० एस०, आई० सी० एस०, डिस्ट्रिक्ट सेशन्स जज, गोंडा लिखते हैं—

"प्रेमचन्दकी कितनी ही कहानिया पढ़कर मैंने विशेष आनन्द प्राप्त किया है। अवश्य ही उनमें कहानियाँ लिखनेकी ईश्वरीय शक्ति है।"

हिन्दीके विद्वानोंकी प्रशसापूर्ण सम्मतियोंका उल्लेख हम यहां इसलिये नहीं करना चाहते कि उनके तो यह घरकी चीज है, उनकी की हुई प्रशसामें दूसरोंको पक्षपातकी गन्ध आ सकती है।

हमे यू० पी० की टेक्स्ट-बुक कमिटीको भी धन्यवाद देना चाहिये कि उसने इस पुस्तकको पुरस्कारके लिये नियत कर इसका गौरव बढ़ाया। आशा है कि अन्य प्रान्तकी टेक्स्ट बुक-कमिटियां तथा हिन्दीके प्रेमीगण सप्तसरोजके इस सोलहवे सस्करणका यथोचित आदर कर हमे कृतार्थ करेंगे।

—प्रकाशक

मानसरोवर

बड़े घरकी बेटी

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गांवके जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धन्यधान्य सम्पन्न थे। गांवका पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हींके कीर्त्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाजेपर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीरमें पजरके सिवा और कुछ शेष न रहा था। पर दूध शायद बहुत देती थी, क्योंकि एक-न-एक आदमी हांडी लिये उसके सिरपर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधीसे अधिक सम्पत्ति वकीलोंकी भेंट कर चुके थे। उनकी वर्त्तमान आय वार्षिक एक हजारसे अधिक न थी। ठाकुर साहबके दो बेटे थे। बड़ेका नाम श्रीकण्ठ सिंह था। उन्होंने बहुत दिनोंतक परिश्रम और उद्योगके बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तरमें नौकर थे। छोटा लड़का लालबिहारीसिंह दोहरे बदनका सजीला जवान

अब आपकी सम्मतिका भावार्थ सुनिये—

"गल्पें सचमुच बहुत उत्तम और भावपूर्ण हैं। रवीन्द्र बाबू के साथ इनकी तुलना करना अन्याय और अनुचित साहस है, पर और कोई भी बँगला लेखक इतनी अच्छी गल्पें लिख सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है।"

एक सम्मति और उल्लेख-योग्य जान पडती है। अनेक पूर्वीय भाषाओंके धुरन्धर विद्वान् मि० आर० पी० ड्यूहर्स्ट एम० ए०, एफ० आर० जी० एस०, आई० सी० एस०, डिस्ट्रिक्ट सेशन्स जज, गोंडा लिखते हैं—

"प्रेमचन्दकी कितनी ही कहानियां पढकर मैंने विशेष आनन्द प्राप्त किया है। अवश्य ही उनमें कहानियाँ लिखनेकी ईश्वरीय शक्ति है।"

हिन्दीके विद्वानोंकी प्रशंसापूर्ण सम्मतियोंका उल्लेख हम यहां इसलिये नहीं करना चाहते कि उनके तो यह घरकी चीज है, उनकी की हुई प्रशंसामें दूसरोंको पक्षपातकी गन्ध आ सकती है।

हमें यू० पी० की टेक्स्ट-बुक कमिटीको भी धन्यवाद देना चाहिये कि उसने इस पुस्तकको पुरस्कारके लिये नियत कर इसका गौरव बढाया। आशा है कि अन्य प्रान्तकी टेक्स्ट बुक-कमिटियां तथा हिन्दीके प्रेमीगण सप्तसरोजके इस सोलहवें संस्करणका यथोचित आदर कर हमें कृतार्थ करेंगे।

—प्रकाशक

सप्तसरोज

बड़े घरकी बेटी

—— ० ——

बेनीमाधव सिंह गौरीपुर गांवके जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बडे धन्यधान्य सम्पन्न थे। गांवका पक्का तालाव और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हींके कीर्त्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाजेपर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीरमें पंजरके सिवा और कुछ शेष न रहा था। पर दूध शायद बहुत देती थी, क्योंकि एक-न-एक आदमी हांडी लिये उसके सिरपर सवार ही रहता था। बेनीमाधव सिंह अपनी आधीसे अधिक सम्पत्ति वकीलोंकी भेंट कर चुके थे। उनकी वर्त्तमान आय वार्षिक एक हजारसे अधिक न थी। ठाकुर साहबके दो बेटे थे। बडेका नाम श्रीकण्ठ सिंह था। उन्होंने बहुत दिनोंतक परिश्रम और उद्योगके बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तरमें नौकर थे। छोटा लड़का लालबिहारीसिंह दोहरे बदनका सजीला जवान

था। मुखड़ा भरा हुआ, चौड़ी छाती, भैंसका दो सेर ताजा दूध वह सवेरे उठ पी जाता था। श्रीकंठ सिंहकी दशा उसके बिल्कुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणोंको उन्होंने इन्हीं दो अक्षरोंपर न्यौछावर कर दिया था। इन दो अक्षरोंने इनके शरीरको निर्बल और चेहरेको कान्तिहीन बना दिया था। इसीसे वैद्यक ग्रन्थोंपर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियोंपर उनका अधिक विश्वास था। सांझ-सवेरे उनके कमरेसे प्रायः खरलकी सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दिया करती थी। लाहौर और कलकत्तेके वैद्योंसे बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकण्ठ इस अंग्रेजी डिग्रीके अधिपति होनेपर भी अंग्रेजी सामाजिक प्रथाओंके विशेष प्रेमी न थे। बल्कि वह बहुधा बड़े जोरसे उनकी निन्दा और तिरस्कार किया करते थे। इसीसे गांवमें उनका बड़ा सम्मान था। दशहरेके दिनोंमें वह बड़े उत्साहसे रामलीलामें सम्मिलित होते और स्वयं किसी-न-किसी पात्रका पार्ट लेते। गौरीपुरमें रामलीलाके वे ही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू सभ्यताका गुणगान उनकी धार्मिकताका प्रधान अङ्ग था। सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथाके तो वे एकमात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियोंकी कुटुम्बमें मिल-जुलकर रहनेकी ओर जो अरुचि होती है उसे वे जाति और देशके लिये बहुत ही हानिकर समझते थे। यही कारण था कि गांवकी ललनाएँ उनकी निन्दक थीं। कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझनेमें भी सङ्कोच न करतीं थीं, स्वयं उनकी पत्नीको ही इस विषयमें उनसे विरोध था। वह इसलिये नहीं कि उसे अपने सास, ससुर, देवर, जेठसे घृणा थी, बल्कि उसका

विचार था कि यदि बहुत कुछ सहन करने और तरह देनेपर भी परिवारके साथ निर्वाह न हो सके तो आये दिनकी कलहसे जीवनको नष्ट करनेकी अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकायी जाय।

आनन्दी एक बड़े कुलकी लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासतके ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी, सिकरे, झाड़-फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदारके योग्य पदार्थ हैं, वह सभी यहाँ विद्यमान थे। भूपसिंह नाम था। बड़े उदारचित्त, प्रतिभाशाली पुरुष थे। पर दुर्भाग्य लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोगसे सब-की सब जीवित रहीं। पहली उमगमें तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये, पर जो पद्रह बीस हजारका कर्ज सिरपर हो गया तो आँखे खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहिनोंसे अधिक रूपवती और गुणशीला थी। इसीसे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर सतानको कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्मसङ्कटमे थे कि इसका विवाह कहां करें। न तो यही चाहते थे कि ऋणका बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपनेको भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकंठ उनके पास किसी चन्देका रुपया मांगने आये। शायद नागरी-प्रचारक चन्दा था। भूपसिंह उनके स्वभावपर रीझ गये और धूमधामसे श्रीकंठ सिंहका आनन्दीके साथ विवाह हो गया।

आनन्दी अपने नये घरमें आई तो यहांका रङ्ग-ढङ्ग कुछ और

ही देखा। जिस टीमटामकी उसे बचपनसे ही आदत पड़ी हुई थी वह यहाँ नाममात्रको भी न थी। हाथी-घोड़ोंकी तो बात क्या, कोई सजी हुई सुन्दर बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर साथ लाई थी, पर यहाँ बाग कहाँ! मकानमें खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीनपर फर्श, न दीवारपर तस्वीरें। यह एक सीधे-सादे देहाती गृहस्थका मकान था। किन्तु आनन्दीने थोड़े ही दिनोंमें अपनेको इस नयी अवस्थाके ऐसा अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलासके सामान कभी देखे ही न थे।

२

एक दिन दोपहरके समय लालबिहारी सिंह दो चिड़ियाँ लिये हुए आया और भावजसे कहा, जल्दीसे पका दो, मुझे भूख लगी है। आनन्दी भोजन बनाकर इनकी राह देख रही थी। अब यह नया व्यंजन बनाने बैठी। हाँडीमें देखा तो घी पावभरसे अधिक न था। बड़े घरकी बेटी, किफायत क्या जाने। उसने सब घी मांसमें डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा तो दालमें घी न था, बोला, दालमें घी क्यों नहीं छोड़ा ?

आनन्दीने कहा, घी सब मांसमें पड़ गया। लालबिहारी जोरसे बोला, अभी परसों घी आया है, इतनी जल्दी उठ गया।

आनन्दीने उत्तर दिया, आज तो कुल पावभर रहा होगा। वह सब मैंने मांसमें डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दीसे जल उठती है, उसी तरह क्षुधासे बावला मनुष्य जरा जरासी बातपर तिनक जाता है।

लालबिहारीको भावजकी यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई। तिनककर बोला, मैकेमें तो चाहे घीकी नदी बहती है।

स्त्री गालियां सह लेती है, मार भी सह लेती है, पर मैकेकी निन्दा उससे नहीं सही जाती। आनन्दी मुह फेरकर बोली, हाथी मरा भी तो नौ लाखका, वहां इतना घी नित्य नाई कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी और बोला जी चाहता है कि जीभ पकड़कर खींच लूँ।

आनन्दीको भी क्रोध आया। मुह लाल हो गया, बोली, वह होते तो आज इसका मजा चखा देते।

अब अपढ, उजड्ड ठाकुरसे न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमीन्दारकी बेटी थी। जब जी चाहता उसपर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊँ उठाकर आनन्दीकी ओर जोरसे फेंकी और बोला, जिसके गुमानपर भूली हुई हो, उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी।

आनन्दीने हाथसे खड़ाऊँ रोकी, सिर बच गया। पर अगुलीमें बड़ी चोट आयी। क्रोधके मारे हवासे हिलते हुए पत्तेकी भांति कांपती हुई अपने कमरेमें आकर खड़ी हो गई। स्त्रीका बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पतिके ही बल और पुरुषत्वका घमण्ड होता है। आनन्दी लोहूका घूँट पीकर रह गई।

२

श्रीकण्ठ सिंह शनिवारको घर आया करते थे। वृहस्पतिको यह घटना हुई थी। दो दिनतक आनन्दी कोपभवनमें रही। न

कुछ खाया, न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्तमें ...ि । को वह नियमानुकूल सन्ध्या समय घर आये और बाहर बैठकर कुछ इधर-उधरकी बातें, कुछ देश और काल सम्बन्धी स... चार तथा कुछ नये मुकदमों आदिकी चर्चा करने लगे। यह वार्त्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गांवके भद्र पुरुषोंको इन बातोंमें ऐसा आनन्द मिलता था कि खाने-पीनेकी भी सुधि न रहती थी। श्रीकण्ठका पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। यह दो-तीन घंटे आनन्दीने बड़े कष्टसे काटे। किसी तरह भोजनका समय आया। पञ्चायत उठी। जब एकान्त हुआ तब लालबिहारीने कहा—भैया, आप जरा घरमें समझा दीजियेगा कि मुंह सभालकर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधव सिंहने बेटेकी ओरसे साक्षी दी, हां,बहू बेटियों-का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि पुरुषोंके मुंह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घरकी बेटी है तो हमलोग भी कोई कुर्मी कहार नहीं हैं।

श्रीकण्ठने चिन्तित स्वरसे पूछा, आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारीने कहा, कुछ भी नहीं, योंही आप ही आप उलझ पड़ीं। मैकेके सामने हमलोगोंको तो कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकण्ठ खा पीकर आनन्दीके पास गये। वह भरी बैठी थी यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनन्दीने पूछा, चित्त तो प्रसन्न है

श्रीकण्ठ बोले, बहुत प्रसन्न है, पर तुमने आजकल घरमें यह क्या उपद्रव मचा रक्खा है?

आनन्दीकी तेवरियोंपर बल पड़ गये और झुंझलाहटके मा...

बदनमें ज्वाला-सी दहक उठी। बोली, जिसने तुम्हें यह आग लगाई है, उसे पाऊं तो मुह झुलस दूँ।

श्रीकण्ठ—इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो ?

आनन्दी—क्या कहूँ, यह मेरे भाग्यका फेर है। नहीं तो एक गंवार छोकरा जिसको चपरासीगिरी करनेका भी ढग नहीं, मुझे खड़ाऊ से मारकर यों न अकड़ता।

श्रीकण्ठ—सब साफ-साफ हाल कहो तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाडले भाईने मुझसे मांस पकानेको कहा। घी हांडीमें पावभरसे अधिक न था। वह मैंने सब मांसमें डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा,दालमें घी क्यों नहीं है ? बस, इसीपर मेरे मैकेको भला-बुरा कहने लगा। मुझसे न रहा गया, मैंने कहा कि वहां इतना घी तो नाई-कहार खा जाते हैं और किसीको जान भी नहीं पड़ता। बस, इतनीसी बातपर उस अन्यायीने मुझपर खड़ाऊ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लेती तो सिर फट जाता। उसीसे पूछो कि मैंने जो कुछ कहा है वह सच है या झूठ।

श्रीकण्ठकी आंखें लाल हो गई। बोले, यहांतक हो गया ! इस छोकड़ेका यह साहस !

आनन्दी स्त्रियोंके स्वभावानुसार रोने लगी। क्योंकि आँसू उनकी पलकोंपर रहते हैं। श्रीकण्ठ बड़े धैर्यवान् और शान्त पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही कभी क्रोध आता था, पर स्त्रियोंके आंसू पुरुषोंकी क्रोधाग्नि भड़कानेमें तेलका काम देते है। रातभर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नताके कारण,पलकतक नहीं झपकी।

प्रातःकाल अपने बापके पास जाकर बोले, दादा, अब इस घरमें मेरा निर्वाह न होगा।

इस तरहकी विद्रोहपूर्ण बातें कहनेपर श्रीकण्ठने कितनी ही बार अपने कई मित्रोंको आड़े हाथों लिया था। परन्तु दुर्भाग्य आज उन्हें स्वयं वही बात अपने मुंहसे कहनी पड़ी! दूसरोंको उपदेश देना भी कितना सहज है।

बेनीमाधव सिंह घबड़ाकर उठे और बोले, क्यों?

श्रीकण्ठ—इसलिये कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठाका कुछ विचार है। आपके घरमें अब अन्याय और हठका प्रकोप हो रहा है। जिनको बड़ोंका आदर-सम्मान करना चाहिये वह उनके सिर चढ़ते हैं। मैं दूसरेका चाकर ठहरा, घरपर रहता नहीं, यहाँ मेरे पीछे स्त्रियोंपर खड़ाऊं और जूतोंकी बौछारें होती हैं। कड़ी बाततक चिन्ता नहीं, कोई एककी दो कह ले, यहाँतक मैं सह सकता हूँ, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात, घूंसे पड़ें और मैं दम न मारूं।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकण्ठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़े ठाकुर अवाक् रह गये। केवल इतना ही बोले, बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इसी तरह घरका नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकण्ठ—इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वादसे ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझानेसे इसी गांवमें, कई घर सम्हल गये, पर जिस स्त्रीकी मान-प्रतिष्ठाका मैं

ईश्वरके दर्बारमें उत्तरदाता हूँ उसके साथ ऐसा घोर अन्याय और पशुवत व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिये, मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारीको कुछ दंड नहीं देता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले, लालबिहारी तुम्हारा भाई है, उससे जब कभी भूल-हो उसके कान पकड़ो। लेकिन—

श्रीकण्ठ—लालबिहारीको मैं अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह—स्त्रीके पीछे?

श्रीकण्ठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेकके कारण।

प्रातःकाल अपने बापके पास जाकर बोले, दादा, अब इस घरमें मेरा निर्वाह न होगा।

इस तरहकी विद्रोहपूर्ण बातें कहनेपर श्रीकण्ठने कितनी ही बार अपने कई मित्रोंको आडे हाथों लिया था। परन्तु दुर्भाग्य आज उन्हें स्वय वही बात अपने मुहसे कहनी पडी! दूसरोंको उपदेश देना भी कितना सहज है।

बेनीमाधव सिंह घबडाकर उठे और बोले, क्यों?

श्रीकण्ठ—इसलिये कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठाका कुछ विचार है। आपके घरमें अब अन्याय और हठका प्रकोप हो रहा है। जिनको बडोंका आदर-सम्मान करना चाहिये वह उनके सिर चढते हैं। मैं दूसरेका चाकर ठहरा, घरपर रहता नहीं, यहाँ मेरे पीछे स्त्रियोंपर खडाऊ और जूतोंकी बौछारें होती हैं। कडी बाततक चिन्ता नहीं, कोई एककी दो कह ले, यहाँतक मैं सह सकता हूँ, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात, घूसे पडें और मैं दम न मारू।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकण्ठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढे ठाकुर अवाक् रह गये। केवल इतना ही बोले, बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो? स्त्रियाँ इसी तरह घरका नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकण्ठ—इतना मैं जानता हूँ, आपके आशीर्वादसे ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। आप स्वय जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझानेसे इसी गांवमें, कई घर सभल गये, पर जिस स्त्रीकी मान-प्रतिष्ठाका मैं

ईश्वरके दर्बारमें उत्तरदाता हूँ उसके साथ ऐसा घोर अन्याय और पशुवत व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिये, मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारीको कुछ दंड नहीं देता।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये। ऐसी बातें और न सुन सके। बोले, लालबिहारी-तुम्हारा भाई है, उससे जब कभी भूल-हो उसके कान पकड़ो। लेकिन—

श्रीकण्ठ—लालबिहारीको मैं अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधव सिंह—स्त्रीके पीछे?

श्रीकण्ठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेकके कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़केका क्रोध शांत करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारीने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीचमें गांवके और कई सज्जन हुक्का चिलमके बहानेसे वहां आ बैठे। कई स्त्रियों ने जब यह सुना कि श्रीकण्ठ पत्नीके पीछे पितासे लड़नेपर तैयार हैं तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षोंकी मधुर वाणियां सुननेके लिये उनकी आत्माएं तलमलाने लगीं। गांवमें कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे जो इस कुलकी नीतिपूर्ण गतिपर मन ही मन जलते थे। वह कहा करते थे, श्रीकण्ठ अपने बापसे दबता है इसलिये वह दब्बू है, उसने इतनी विद्या पढ़ी इसलिये वह किताबोंका कीड़ा है, बेनीमाधव सिंह उसकी सलाहके बिना कोई काम नहीं करते यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावोंकी शुभ कामनाएं आज पूरी होती दिखाई दीं। कोई हुक्का पीनेके बहाने और कोई लगानकी रसीद दिखाने, आ आकर बैठ गये। बेनीमाधवसिंह पुराने आदमी

४

जिस समय लालविहारी सिंह सिर झुकाये आनन्दीके द्वारपर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठ सिंह भी आँखें लाल किये बाहरसे आये। भाईको खड़ा देखा तो घृणासे आँखें फेर लीं और कतरा कर निकल गये मानो उसकी परछाहींसे भी दूर भागते हैं।

आनन्दीने लालविहारीकी शिकायत तो की थी लेकिन अब मनमें पछता रही थी। वह स्वभावसे ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ जायगी। वह मनमें अपने पतिपर झुझला रही थी कि यह इतनेमें गरम क्यों हो जाते हैं? उसपर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलनेको कहें तो कैसे क्या करूँगी। इसी बीचमें जब उसने लालविहारीको दरवाजेपर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ है उसे क्षमा करना, तो उसका रहा सहा क्रोध भी पानी-पानी हो गया। वह रोने लगी। मनकी मैल धोनेके लिये नयन जलसे उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठको देखकर आनन्दीने कहा, लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ—तो मैं क्या करूं?

आनन्दी—भीतर बुला लो। मेरी जीभमें आग लगे मैंने कहाँसे यह झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ—मैं न बुलाऊंगा।

आनन्दी—पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो कहीं चल दे।

श्रीकण्ठ न उठे। इतने में लालविहारीने फिर कहा, भाभी ! भैयासे मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुह नहीं देखना चाहते, इसलिये मैं भी अपना मुह उन्हें न दिखाऊ गा।

लालविहारी इतना कहकर लौट पडा और शीघ्रतासे दरवाजेकी ओर बढा। अन्तमें आनन्दी कमरेसे निकली और उसका हाथ पकड लिया। लालविहारीने पीछे फिर कर देखा और आंखमें आंसू भर बोला, मुझे जाने दो।

आनन्दी—कहा जाते हो ?

लालविहारी—जहां कोई मेरा मुह न देखे।

आनन्दी —मैं न जाने दूगी।

लालविहारी—मैं तुम लोगोंके साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनन्दी–तुम्हे मेरी सौगन्ध,अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालविहारी—जबतक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैयाका मन मेरी तरफसे साफ हो गया, तबतक मैं इस घरमें कदापि न रहूँगा।

आनन्दी—मैं ईश्वरकी साची देकर कहती हूँ कि तुम्हारी ओरसे तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकठका हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालविहारीको गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट फूट कर रोये। लालविहारीने सिसकते हुए कहा, भैया ! अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मु ह न देखू गा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे वह मैं सहर्ष स्वीकार करू गा।

श्रीकठने कांपते हुए स्वरसे कहा—लल्लू ! इन बातोंको बिल-

लेती रही, परन्तु जब उसने देखा कि ये औषधियां कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक महौषधिकी फिक्रमें लगी जो काया-कल्पसे कम नहीं थी। उसने महीनों, बरसों इसी चिन्ता-सागरमें गोते लगाते काटे। उसने दिलको बहुत समझाया, परन्तु मनमें जो बात समा गई थी वह किसी तरह न निकली। उसे बडा भारी आत्मत्याग करना पडेगा। शायद पति-प्रेमके सदृश अनमोल रत्न भी उसके साथ निकल जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है? पन्द्रह वर्षतक लगातार जिस प्रेमके वृक्षकी उसने सेवा की है क्या वह हवाका एक झोंका भी न सह सकेगा?

गोदावरीने अन्तमें अपने प्रबल विचारोंके आगे सिर झुका ही दिया। अब सौतका शुभागमन करनेके लिये वह तैयार हो गई थी।

२

पण्डित देवदत्त गोदावरीका यह प्रस्ताव सुनकर स्तम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि या तो यह प्रेमकी परीक्षा कर रही है या मेरा मन लेना चाहती है। उन्होंने उसकी बात हसकर टाल दी। पर जब गोदावरीने गम्भीर भावसे कहा, तुम इसे हसी मत समझो मैं अपने हृदयसे कहती हूँ कि संतानका मुह देखनेके लिये मैं सौतसे छातीपर मूंग दलवानेके लिये भी तैयार हूँ, तब तो उनका सन्देह जाता रहा। इतने ऊंचे और पवित्र भावसे भरी हुई गोदावरीको उन्होंने गलेसे लिपटा लिया। वे बोले, मुझसे यह न होगा। मुझे सन्तानकी अभिलाषा नहीं।

गोदावरीने जोर देकर कहा, तुमको न हो, मुझे तो है। अगर

अपनी खातिरसे नहीं तो तुम्हें मेरी खातिरसे यह काम करना ही पड़ेगा।

पण्डितजी सरल स्वभावके मनुष्य थे। हामी तो उन्होंने न भरी, पर बार-बार कहनेसे वे कुछ-कुछ राजी अवश्य हो गये। उस तरफसे इसीकी देर थी। पंडितजीको कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरीकी कार्य-कुशलताने सब काम उनके लिये सुलभ कर दिया। उसने इस कामके लिये अपने पाससे केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये। लोकनिन्दाका भय इस मार्गमें सबसे बड़ा कांटा था। देवदत्त मनमें विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजाकर चलूंगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे? मेरे दफ्तरके मित्र मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुस्कुराते हुए कटाक्षोंसे मेरी ओर देखेंगे। उनके ये कटाक्ष छुरीसे भी ज्यादा तेज होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा?

गोदावरीने अपने गांवमें जाकर इस कार्य्यको आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नयी बहू घरमें आ गई। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई मानो वह बेटेका ब्याह कर लाई हो। वह खूब गाती-बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही उसे इस गानेके बदले रोना पड़ेगा।

२

कई मास बीत गये। गोदावरी अपनी सौतपर इस तरह शासन करती थी मानो वह उसकी सास हो, तथापि वह यह बात कभी न भूलती थी कि मैं वास्तवमें उसकी सास नहीं हूँ। उधर

लेती रही, परन्तु जब उसने देखा कि ये औषधिया कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक महौषधिकी फिक्रमें लगी जो काया-कल्पसे कम नहीं थी। उसने महीनों, बरसों इसी चिन्ता-सागरमें गोते लगाते काटे। उसने दिलको बहुत समझाया, परन्तु मनमें जो बात समा गई थी वह किसी तरह न निकली। उसे बडा भारी आत्मत्याग करना पडेगा। शायद पति-प्रेमके सदृश अनमोल रत्न भी उसके साथ निकल जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है? पन्द्रह वर्षतक लगातार जिस प्रेमके वृक्षकी उसने सेवा की है क्या वह हवाका एक झोंका भी न सह सकेगा?

गोदावरीने अन्तमें अपने प्रबल विचारोंके आगे सिर झुका ही दिया। अब सौतका शुभागमन करनेके लिये वह तैयार हो गई थी।

२

पण्डित देवदत्त गोदावरीका यह प्रस्ताव सुनकर स्तम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि या तो यह प्रेमकी परीक्षा कर रही है या मेरा मन लेना चाहती है। उन्होंने उसकी बात हसकर टाल दी। पर जब गोदावरीने गम्भीर भावसे कहा, तुम इसे हसी मत समझो मैं अपने हृदयसे कहती हूँ कि सतानका मुह देखनेके लिये मैं सौतसे छातीपर मूग दलवानेके लिये भी तैयार हूँ, तब तो उनका सन्देह जाता रहा। इनने ऊचे और पवित्र भावसे भरी हुई गोदावरीको उन्होंने गलेसे लिपटा लिया। वे बोले, मुझसे यह न होगा। मुझे सन्तानकी अभिलाषा नहीं।

गोदावरीने जोर देकर कहा, तुमको न हो, मुझे तो है। अगर

अपनी खातिरसे नहीं तो तुम्हे मेरी खातिरसे यह काम करना ही पड़ेगा।

पण्डितजी सरल स्वभावके मनुष्य थे। हामी तो उन्होंने न भरी, पर बार-बार कहनेसे वे कुछ-कुछ राजी अवश्य हो गये। उस तरफसे इसीकी देर थी। पंडितजीको कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरीकी कार्य-कुशलताने सब काम उनके लिये सुलभ कर दिया। उसने इस कामके लिये अपने पाससे केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये। लोकनिन्दाका भय इस मार्गमें सबसे बड़ा काटा था। देवदत्त मनमें विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजाकर चलूंगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे? मेरे दफ्तरके मित्र मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुस्कुराते हुए कटाक्षोंसे मेरी ओर देखेंगे। उनके ये कटाक्ष छुरीसे भी ज्यादा तेज होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा?

गोदावरीने अपने गावमें जाकर इस कार्य्यको आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नयी बहू घरमें आ गई। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई मानो वह बेटेका व्याह कर लाई हो। वह खूब गाती-बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही उसे इस गानेके बदले रोना पड़ेगा।

२

कई मास बीत गये। गोदावरी अपनी सौतपर इस तरह शासन करती थी मानो वह उसकी सास हो, तथापि वह यह बात कभी न भूलती थी कि मैं वास्तवमें उसकी सास नहीं हूँ। उधर

गोमतीको भी अपनी स्थितिका पूरा ख्याल रहता था। इसी कारण सासके शासनकी तरह कठोर न रहनेपर भी गोदावरीका शासन उसे अप्रिय प्रतीत होता था। उसे अपनी छोटी-मोटी जरूरतोंके लिये भी गोदावरीसे कहते सङ्कोच होता था।

कुछ दिनों बाद गोदावरीके स्वभावमें एक विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह पण्डितजीको घरमें आते-जाते बड़ी तीव्र दृष्टिसे देखने लगी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता अब मानो लोप सी हो गई, जरासी बात भी उसके पेटमें नहीं पचती। जब पडित जी दफ्तरसे आते तब गोदावरी उनके पास घण्टों बैठी गोमतीका वृत्तान्त सुनाया करती। इस वृत्तान्त-कथनमें बहुत ऐसी छोटी छोटी बातें भी होती थीं कि जब कथा समाप्त होती तब पडितजीके हृदयसे बोझसा उतर जाता। गोदावरी क्यों इतनी मृदुभाषिणी हो गई थी, इसका कारण समझना मुश्किल है। शायद अब वह गोमतीसे डरती थी। उसके सौन्दर्यसे, उसके यौवनसे, उसके लज्जायुक्त नेत्रोंसे शायद वह अपनेको पराभूत समझती। बांधको तोड़कर वह पानीकी धाराको मिट्टीके ढेलोंसे रोकना चाहती है।

एक दिन गोदावरीने गोमतीसे मीठे चावल पकानेको कहा। शायद वह रक्षाबन्धनका दिन था। गोमतीने कहा, शक्कर नहीं है। गोदावरी यह सुनते ही विस्मित हो उठी। शक्कर इतनी जल्दी कैसे उठ गई! जिसे छाती फाड़कर कमाना पड़ता है, उसे अखरता है, खानेवाले क्या जानें?

जब पण्डितजी दफ्तरसे आये तब यह जरा-सी बात बड़ा विस्तृत रूप धारण करके उनके कानोंमें पहुँची। थोड़ी देरके लिये

पंडितजीके दिलमें भी यह शङ्का हुई कि गोमतीको कहीं भस्मक रोग तो नहीं हो गया।

ऐसी ही घटना एक बार फिर हुई। पंडितजीको बवासीरकी शिकायत थी। लालमिर्च वे बिलकुल न खाते थे। गोदावरी जब रसोई बनाती थी तब वह लालमिर्च रसोई-घरमें लाती ही न थी। गोमतीने एक दिन दालमें मसालेके साथ थोड़ी सी लाल-मिर्च भी डाल दी। पंडितजीने दाल कम खाई। पर गोदावरी गोमतीके पीछे पड़ गई। ऐंठकर वह उससे बोली ऐसी जीभ जल क्यों नहीं जाती।

पंडितजी बड़े ही सीधे आदमी थे। दफ्तर गये, खाया, पड़कर सो रहे। वे एक साप्ताहिक पत्र मंगाते थे। उसे कभी-कभी महीनों खोलनेकी नौबत न आती थी। जिस काममें जरा भी कष्ट या परिश्रम होता उससे वे कोसों दूर भागते थे। कभी कभी उनके दफ्तरमें थियेटरके "पास" मुफ्त मिला करते थे। पर पंडितजी उनसे कभी काम नहीं लेते। और ही लोग उनसे मांग ले जाया करते। रामलीला या कोई मेला तो उन्होंने शायद नौकरी करनेके बाद फिर कभी देखा ही नहीं। गोदावरी उनकी प्रकृति-का परिचय अच्छी तरह पा चुकी थी। पंडितजी भी प्रत्येक विषयमें गोदावरीके मतानुसार चलनेमें अपनी कुशल समझते थे।

पर रूई-सी मुलायम वस्तु भी दबकर कठोर हो जाती है पंडितजीको यह आठों पहरकी चह-चह असह्य सी प्रतीत होती। कभी-कभी मनमें झुंझलाने भी लगते। इच्छा शक्ति जो इतने

दिनोंतक बेकार पड़ी रहनेसे निर्बल-सी हो गई थी, अब कुछ सजीव-सी होने लगी थी।

पंडितजी यह मानते थे कि गोदावरीने सौतको घर लानेमें बड़ा भारी त्याग किया है। उसका यह त्याग अलौकिक कहा जा सकता है, परन्तु उसके त्यागका भार जो कुछ है वह मुझपर है गोमतीपर उसका क्या एहसान! मेरे कारण उसपर क्यों ऐसी क्रूरता की जाती है। यहा उसे कौन-सा सुख है जिसके लिये वह फटकारपर फटकार सहे? पति मिला है वह बूढ़ा और सदा रोगी, घर मिला है वह ऐसा कि अगर आज नौकरी छूट जाय तो कल चूल्हा न जले। इस दशामें गोदावरीका यह स्नेह-रहित वर्ताव उन्हें बहुत अनुचित मालूम होता।

गोदावरीकी दृष्टि इतनी स्थूल न थी कि उसे पण्डितजीके मनके भाव नजर न आवें। उनके मनमें जो विचार उत्पन्न होते वे सब गोदावरीको उनके मुखपर अङ्कितसे दिखाई पड़ते। यह जानकारी उसके हृदयमें एक ओर गोमतीके प्रति ईर्षाकी प्रचण्ड अग्नि दहका देती, दूसरी ओर पंडित देवदत्तपर निष्ठुरता और स्वार्थ-प्रियताका दोषारोपण कराती। फल यह हुआ कि मनोमालिन्य दिन-दिन बढ़ता ही गया।

५

गोदावरीने धीरे-धीरे पंडितजीसे गोमतीकी बातचीत करनी छोड़ दी, मानो उसके निकट गोमती घरमें थी ही नहीं। न उसके खाने पीनेकी वह सुध लेती है, न कपड़े लत्ते की। एक बार कई दिनोंतक उसे जलपानके लिये कुछ भी न मिला। पंडित

जी तो आलसी जीव थे। वे इन सब अत्याचारोंको देखा करते, पर अपने शांतिसागरमें घोर उपद्रव मच जानेके भयसे किसीसे कुछ न कहते। तथापि इस पिछले अन्यायने उनकी महती सहन-शक्तिको भी मथ डाला। एक दिन उन्होंने गोदावरीसे डरते-डरते कहा, क्या आजकल जलपानके लिये मिठाई-विठाई नहीं आती?

गोदावरीने क्रुद्ध होकर जवाब दिया, तुम लाते ही नहीं तो आवे कहां से! मेरे कोई नौकर बैठा है?

देवदत्तको गोदावरीके ये कठोर वचन तीरसे लगे। आजतक गोदावरीने उनसे ऐसी रोषपूर्ण बातें कभी न की थी।

वे बोले, धीरे बोलो, झुंझलानेकी तो कोई बात नहीं है। गोदावरीने आंखें नीची करके कहा, मुझे तो जैसे आता है वैसे बोलती हूँ। दूसरोंकी-सी मधुर बोली कहांसे लाऊं?

देवदत्तने जरा गरम होकर कहा, आजकल मुझे तुम्हारे मिजाजका कुछ रंग ही नहीं मालूम होता। बात बातपर तुम उलझती रहती हो।

गोदावरीका चेहरा क्रोधाग्निसे लाल हो गया। वह बैठी थी खड़ी हो गयी। उसके होंठ फड़कने लगे। वह बोली, मेरी कोई बात अब तुमको क्यों अच्छी लगेगी। अब तो मैं सिरसे पैरतक दोषोंसे भरी हुई हूं। अब और लोग तुम्हारे मनका काम करेंगे। मुझसे नहीं हो सकता। यह लो सन्दूककी कुंजी। अपने रुपये-पैसे सम्भाल लो, यह रोज रोजकी झंझट मेरे मानकी नहीं। जबतक निभा, निभाया। अब नहीं निभ सकता।

पण्डित देवदत्त मानो मूर्च्छित-से हो गये। जिस शांति भगरा

उन्हें भय था उसने अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके उनके घरमें प्रवेश किया। वह कुछ भी न बोल सके। इस समय उनके अधिक बोलनेसे बात बढ़ जानेका भय था। वह बाहर चले आये और सोचने लगे कि मैंने गोदावरीके साथ कौन-सा अनुचित व्यवहार किया है। उनके ध्यानमें न आया कि गोदावरीके हाथसे निकलकर घरका प्रबन्ध कैसे हो सकेगा। इस थोडी सी आमदनीमें वह न जाने किस प्रकार काम चलाती थी? क्या क्या उपाय वह करती थी? अब न जाने नारायण कैसे पार लगावेंगे? उसे मनाना पडेगा और हो ही क्या सकता है। गोमती भला क्या कर सकती है, सारा बोझ मेरे ही सिर पड़ेगा। मानेगी तो, पर मुश्किलसे।

परन्तु पंडितजीकी ये शुभकामनाएं निष्फल हुईं। सन्दूक की वह कुञ्जी विषैली नागिनकी तरह वहीं आंगनमें ज्यों-की त्यों तीन दिनतक पडी रही, किसीको उसके निकट जानेका साहस न हुआ।

चौथे दिन पण्डितजीने मानो जानपर खेलकर उस कुञ्जीको उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने उनके सिरपर पहाड उठाकर रख दिया। आलसी आदमियोंको अपने नियमित मार्गसे तिलभर भी हटना बडा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पंडितजी जानते थे कि मैं अपने दफ्तरके कारण इस कार्यको सभालनेमें असमर्थ हू, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुञ्जी गोमती को दें। पर यह केवल दिखावा ही भर था। कुञ्जी उन्हींके पास रहती थी, काम सब गोमतीको करना पडता था। इस प्रकार गृहस्थीके शासनका अन्तिम साधन भी

बाधा, कोई रुकावट न पड़ी। हां, अनुभव न होनेके कारण पंडित-जीका प्रबन्ध गोदावरीके प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ खर्च ज्यादा पड़ जाता था। पर काम भलीभांति चला जाता था। हां, गोदावरीको गोमतीके सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षामें अग्नि है। परन्तु अग्निका गुण उसमें नहीं। वह हृदयको फैलाने के बदले और भी संकीर्ण कर देती है। अब घरमें कुछ हानि हो जानेसे गोदावरीको दुःखके बदले आनन्द होता। बरसातके दिन थे। कई दिनतक सूर्यनारायणके दर्शन न हुए। सन्दूकमें रक्खे हुए कपड़ोंमें फफूंदी लग गई। तेलके अचार बिगड़ गये। गोदावरीको यह सब देखकर रत्तीभर भी दुःख न हुआ। हां, दो चार जली-कटी सुनानेका अवसर उसे अवश्य मिल गया। मालकिन ही बनना आता है कि मालकिनका काम करना भी।

पंडित देवदत्तकी प्रकृतिमें भी अब नया रंग नजर आने लगा। जबतक गोदावरी अपनी कार्यपरायणतासे घरका सारा बोझ संभाले थी तबतक उनको कभी किसी चीजकी कमी नहीं खली। यहांतक कि शाक-भाजीके लिये भी उन्हें बाजार नहीं जाना पड़ा। पर अब गोदावरी उन्हें दिनमें कई बार बाजार दौड़ते देखती। गृहस्थीका प्रबन्ध ठीक न रहनेसे बहुधा जरूरी चीजोंके लिये उन्हें बाजार ऐन वक्तपर जाना पड़ता। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना-सुनाकर कहती, यही महाराज हैं कि एक तिनका उठानेके लिये भी न उठते थे। अब देखती हूँ, दिनमें दस दफे बाजारमें खड़े रहते हैं। अब मैं इन्हें कभी यह कहते नहीं सुनती कि मेरे लिखने-पढ़नेमें हर्ज होगा।

गोदावरीको इस बातका एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाजार हाटके काममें कुशल नहीं हैं। इसलिये जब उसे कपड़ेकी जरूरत होती तब वह अपने पड़ोसके एक बूढ़े लाला साहबसे मगाया करती थी। पण्डितजीको यह बात भूल सी गई थी कि गोदावरीको साड़ियोंकी भी जरूरत पड़ती है। उनके सिरसे तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। खुद वे भी वही कपडे पहनते थे जो गोदावरी मगाकर उन्हें दे देती थी। पण्डितजीको नये फैशन और नये नमूनोंसे कोई प्रयोजन न था। पर अब कपड़ोंके लिये भी उन्हींको बाजार जाना पडता है। एक बार गोमतीके पास साडियां न थीं। पण्डितजी बाजार गये तो एक बहुत अच्छा सा जोडा उसके लिये ले आये। बजाजने मन-माने दाम लिये। उधार सौदा लानेमें पण्डितजी जरा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमतीने वह जोडा गोदावरीको दिखाया। गोदावरीने देखा और मुह फेरकर रुखाईसे बोली, भला तुमने उन्हें कपडे लाना तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये, उनके हाथका लाया हुआ कपडा स्वप्नमें भी पहनना नसीब नहीं हुआ।

ऐसी घटनाए गोदावरीकी ईर्षाग्निको और भी प्रज्वलित करा देती थीं। जबतक उसे यह विश्वास था कि पण्डितजी स्वभावसे ही रूखे हैं तबतक उसे सन्तोष था। परन्तु अब उनकी ये नयी नयी तरगे देखकर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीतिको मैं सैकड़ों-यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणीने केवल अपने यौवन-से जीत लिया। उसे अब निश्चय हुआ कि मैं जिसे सच्चा प्रेम समझ रही थी वह वास्तवमें कपटपूर्ण था। वह निरा स्वार्थ था

सज्जनताका दंड

१

साधारण मनुष्यकी तरह शाहजहांपुरके डिस्ट्रिक्ट इञ्जीनियर सरदार शिवसिंहमें भी भलाइयां और बुराइयां दोनों ही वर्तमान थीं। भलाई यह थी कि उनके यहां न्याय और दयामें कोई अन्तर न था। बुराई यह थी कि वे सर्वथा निर्लोभ और निःस्वार्थ थे। भलाईने मातहतोंको निडर और आलसी बना दिया था, बुराईके कारण उस विभागके सभी अधिकारी उनकी जानके दुश्मन बन गये थे।

प्रातःकालका समय था। वे किसी पुलकी निगरानीके लिये तैयार खड़े थे। मगर साईस अभीतक मीठी नींद ले रहा था। रातको उसे अच्छी तरह सहेज दिया गया था कि पौ फटनेसे पहले गाड़ी तैयार कर लेना। लेकिन सुबह भी हुई, सूर्य भगवानने दर्शन भी दिये, शीतल किरणोंमें गरमी भी आई, पर साईसकी नींद अभीतक नहीं टूटी।

सरदार साहब खड़े-खड़े थककर एक कुर्सीपर बैठ गये। साईस तो किसी तरह जागा, परन्तु अर्दलीके चपरासियोंका पता नहीं। जो महाशय डाक लेने गये थे एक ठाकुरद्वारमें खड़े चरणामृतकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जो ठेकेदारको बुलाने गये थे वे बाबा रामदासकी सेवामें बैठे गांजेका दम लगा रहे थे।

धूप तेज होती जाती थी। सरदार साहब झुंझलाकर मकानमें चले गये और अपनी पत्नीसे बोले, इतना दिन चढ़ आया, अभीतक एक चपरासीका भी पता नहीं। इनके मारे तो मेरे नाकमें दम आ गया।

पत्नीने दीवारकी ओर देखकर दीवारसे कहा, यह सब इन्हें सिर चढ़ानेका फल है।

सरदार साहब चिढ़कर बोले, तो क्या करूं, इन्हें फांसी दे दूं?

२

सरदार साहबके पास मोटरकारका तो कहना ही क्या, कोई फिटिन भी न थी। वे अपने इक्केसे ही प्रसन्न थे, जिसे उनके नौकर-चाकर अपनी भाषामें उड़नखटोला कहते थे। शहरके लोग उसे इतना आदरसूचक नाम न देकर छकड़ा कहना ही उचित समझते थे। इसी तरह सरदार साहब अन्य व्यवहारोंमें भी बड़े मितव्ययी थे। उनके दो भाई इलाहाबादमें पढ़ते थे। विधवा माता बनारसमें रहती थीं। एक विधवा बहिन भी उन्हींपर अवलम्बित थी। इनके सिवा कई गरीब लड़कोंको छात्रवृत्तियां भी देते थे। इन्हीं कारणोंसे वे सदा खाली हाथ रहते। यहांतक कि उनके कपड़ोंपर भी इस आर्थिक दशाके चिह्न दिखाई देते थे। लेकिन यह सब कष्ट सहकर भी वे लोभको अपने पास फटकने न देते थे। जिन लोगोंपर उनका स्नेह था वे उनकी सज्जनताको सराहते थे और उन्हें देवता समझते थे। उनकी सज्जनतासे उन्हें कोई हानि न होती थी, लेकिन जिन लोगोंसे उनके व्यावसायिक

सम्बन्ध थे वे उनके सद्भावोंके ग्राहक न थे, क्योंकि उन्हें हानि होती थी। यहातक कि उन्हें अपनी सहधर्मिणीसे भी कभी कभी अप्रिय बातें सुननी पडती थीं।

एक दिन वे दफ्तरसे आये तो उनकी पत्नीने स्नेहपूर्ण ढगसे कहा,तुम्हारी यह सज्जनता किस कामकी, जब सारा ससार तुम को बुरा कह रहा है।

सरदार साहबने दृढ़तासे जवाब दिया, ससार जो चाहे कहे परमात्मा तो देखता है।

रामाने यह जवाब पहले ही सोच लिया था। वह बोली, मैं तुमसे विवाद तो करती नहीं, मगर जरा अपने दिलमें विचार करके देखो कि तुम्हारी इस सचाईका दूसरों पर क्या असर पडता है ? तुम तो अच्छा वेतन पाते हो। तुम अगर हाथ न बढ़ाओ तो तुम्हारा निर्वाह हो सकता है। रूखी रोटियां मिल ही जायंगी। मगर ये दस-दस, पाच पाच रुपयेके चपरासी, मुहर्रिर, दफ्तरी बेचारे कैसे गुजर करें। उनके भी बाल-बच्चे हैं। उनके भी कुटुम्ब परिवार हैं। शादी-गमी, तिथि-त्यौहार यह सब उनके साथ लगे हुए हैं। भलमनसीका भेष बनाये बिना काम नहीं चलता। बताओ उनका गुजर कैसे हो ? अभी रामदीन चपरासीकी घर वाली आयी थी, रोते-रोते आंचल भींगता था। लड़की हो गयी है। अब उसका ब्याह करना पड़ेगा। ब्राह्मणकी जाति हजारोंका खर्च। बताओ उसके आसू किसके सिर पडेंगे ?

ये सब बातें सच थीं। इससे सरदार साहबको इनकार हो सकता था। उन्होंने स्वय इस विषयमें बहुत कुछ

किया था। यही कारण था कि वह अपने मातहतोंके साथ बड़ी नरमीका व्यवहार करते थे। लेकिन सरलता और शालीनताका आत्मिक गौरव चाहे जो हो, उनका आर्थिक मोल बहुत कम है। वे बोले, तुम्हारी बातें सब यथार्थ हैं, किन्तु मैं विवश हूँ। अपने नियमोंको कैसे तोड़ूँ? यदि मेरा वश चले तो मैं उन लोगोंका वेतन बढ़ा दूँ। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं खुद लूट मचाऊँ और उन्हें लूटने दूँ।

रामाने व्यंग्यपूर्ण शब्दोंमें कहा, तो यह हत्या किसपर पड़ेगी?

सरदार साहबने तीखे होकर उत्तर दिया, यह उन लोगोंपर पड़ेगी जो अपनी हैसियत और आमदनीसे अधिक खर्च करना चाहते हैं। अरदली बनकर क्यों वकीलके लड़केसे लड़की ब्याहनेकी ठानते हैं। दफ्तरीको यदि टहलुवेकी जरूरत हो तो यह किसी पाप-कार्यसे कम नहीं। मेरे साईसकी स्त्री अगर चाँदीकी सिल गलेमें डालना चाहे तो यह उसकी मूर्खता है। इस झूठी बड़ाईका उत्तरदाता मैं नहीं हो सकता।

२

इञ्जिनियरोंका ठेकेदारोंसे कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा मधुमक्खियोंका फूलोंसे। अगर वे अपने नियत भागसे अधिक पानेकी चेष्टा न करें तो उनसे किसीको शिकायत नहीं हो सकती। यह मधु रस कमीशन कहलाता है। रिश्वत और कमीशनमें बड़ा अन्तर है। रिश्वत लोक और परलोक दोनोंका ही सर्वनाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदमाशी है। मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्यका डर है, न पर-

आत्माका भय, यहाँतक कि वहाँ आत्माकी छिपी हुई चुटकियोंकी भी गुजर नहीं है और कहाँतक कहें इसकी ओर बदनामी आँख भी नहीं उठा सकती। यह वह बलिदान है जो हत्या होते हुए भी धर्मका एक अंश है। ऐसी अवस्थामें यदि सरदार शिवसिंह अपने उज्ज्वल चरित्रको इस धब्बेसे साफ रखते थे और उसपर अभिमान करते थे तो वे क्षमाके पात्र थे।

मार्चका महीना बीत रहा था। चीफ इञ्जिनियर साहब जिलेमें मुआयना करने आ रहे थे। मगर अभीतक इमारतोंका काम अपूर्ण था। सड़कें खराब हो रही थीं, ठेकेदारोंने मिट्टी और कङ्कड़ भी नहीं जमा किये थे।

सरदार साहब रोज ठेकेदारोंको ताकीद करते थे, मगर इसका कुछ फल न होता था।

एक दिन उन्होंने सबको बुलाया। वे कहने लगे, तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मैं इस जिलेसे बदनाम होकर जाऊँ? मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं चाहता तो आपसे काम छीनकर खुद करा लेता, मगर मैंने आपको हानि पहुँचाना उचित न समझा। उसकी मुझे यह सजा मिल रही है। खैर!

ठेकेदार लोग यहाँसे चले तो बातें होने लगीं। मिस्टर गोपालदास बोले, अब आटे-दालका भाव मालूम हो जायगा।

शहबाज खाँने कहा, किसी तरह इसका जनाजा निकले तो यहाँसे ...

सेठ चुन्नीलालने फरमाया-इञ्जिनियरसे मेरी जान-पहचान है। मैं उनके साथ काम कर चुका हूँ। वह इन्हें खूब लथेड़ेगा।

इसपर बूढ़े हरिदासने उपदेश दिया, यारो, स्वार्थकी बात और है। नहीं तो सच यह है कि यह मनुष्य नहीं देवता है। भला और नहीं तो सालभरमें कमीशनके १० हजार तो होते होंगे। इतने रुपयोंको ठीकरेकी तरह तुच्छ समझना क्या कोई सहज बात है? एक हम हैं कि कौड़ियोंके पीछे ईमान बेचते फिरते हैं। जो सज्जन पुरुष हमसे एक पाईका रवादार न हो, सब प्रकारके कष्ट उठाकर भी जिसकी नीयत डावाडोल न हो, उसके साथ ऐसा नीच और कुटिल बर्ताव करना पड़ता है। इसे अपने अभाग्यके सिवा और क्या समझें।

शहबाज खांने फरमाया हां, इसमें तो कोई शक नहीं कि यह शख्स नेकीका फरिश्ता है।

सेठ चुन्नीलालने गम्भीरतासे कहा, खां साहब! बात तो यही है, जो तुम कहते हो। लेकिन किया क्या जाय? नेकनीयतीसे तो काम नहीं चलता। यह दुनिया तो छल-कपटकी है।

मिस्टर गोपालदास बी० ए० पास थे। वे गर्वके साथ बोले, इन्हें जब इस तरह रहना था तो नौकरी करनेकी क्या जरूरत थी? यह कौन नहीं जानता कि नियतको साफ रखना अच्छी बात है। मगर यह भी तो देखना चाहिये कि इसका दूसरोंपर क्या असर पड़ता है। हमको तो ऐसा आदमी चाहिये जो खुद खाय और हमें भी खिलावे। खुद हलुवा खाय, हमें रूखी रोटिया ही खिलावे। वह अगर एक रुपया कमीशन लेगा तो उसकी जगह पांचका फायदा करा देगा। इन महाशयके यहां क्या है? इसलिये आप जो चाहें कहें, मेरी तो कभी इनसे निभ ही नहीं सकती।

शहबाज खां बोले, हां, नेक और पाक-साफ रहना जरूर अच्छी चीज है, मगर ऐसी नेकी हीसे क्या जो दूसरोंकी जान ही ले ले।

बूढ़े हरिदासकी बातोंकी जिन लोगोंने पुष्टि की थी वे सब गोपालदासकी हा-में-हा मिलाने लगे। निर्बल आत्माओंमें सचाईका प्रकाश जुगनूकी चमक है।

४

सरदार साहबको एक पुत्री थी। उसका विवाह मेरठके एक वकीलके लडकेसे ठहरा था। लडका होनहार था। जाति कुल ऊंचा था। सरदार साहबने कई महीनेकी दौड़-धूपमें इस विवाहको तै किया था और सब बातें हो चुकी थीं, केवल दहेजका निर्णय न हुआ था। आज वकील साहबका एक पत्र आया। उसने इस बातका भी निश्चय कर दिया, मगर विश्वास, आशा और वचनके बिलकुल प्रतिकूल। पहले वकील साहबने एक जिलेके इञ्जिनियरके साथ किसी प्रकारका ठहराव व्यर्थ समझा। बड़ी सस्ती उदारता प्रकट की। इस लज्जित और घृणित व्यवहारपर खूब आंसू बहाये। मगर जब ज्यादा पूछ-ताछ करनेपर सरदार साहबके धन-वैभवका भेद खुल गया तब दहेजका ठहराना आवश्यक हो गया। सरदार साहबने आशङ्कित हाथोंसे पत्र खोला। पांच हजार रुपयेसे कमपर विवाह नहीं हो सकता। वकील साहबको बहुत खेद और लज्जा थी कि वे इस विषयमें स्पष्ट होनेपर मजबूर किये गये। मगर वे अपने खानदानके कई बूढ़े, खुर्राट, विचार हीन, स्वार्थान्ध महात्माओंके हाथों बहुत तङ्ग थे। उनका

कोई वश न था। इञ्जिनियर साहबने एक लम्बी सांस खींची। सारी आशाएं मिट्टीमें मिल गयीं। क्या सोचते थे, क्या हो गया। विकल होकर कमरेमें टहलने लगे।

उन्होंने जरा देर पीछे पत्रको उठा लिया और अन्दर चले। विचारा था कि यह पत्र रामाको सुनावें, मगर फिर ख्याल आया कि यहां सहानुभूतिकी कोई आशा नहीं। क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊं? क्यों मूर्ख बनूं? वह बिना तानोंके बात न करेगी। यह सोचकर वे आंगनसे लौट गये।

सरदार साहब स्वभावके बड़े दयालु थे और कोमल हृदय आपत्तियोंमें स्थिर नहीं रह सकता। वे दुःख और ग्लानिसे भरे हुए सोच रहे थे कि मैंने ऐसे कौनसे बुरे कर्म किये हैं जिनका मुझे यह फल मिल रहा है। बरसोंकी दौड़ धूपके बाद जो कार्य सिद्ध हुआ था वह क्षणमात्रमें नष्ट हो गया। अब वह मेरी सामर्थ्यसे बाहर है। मैं उसे नहीं सम्हाल सकता। चारों ओर अन्धकार है। कहीं आशाका प्रकाश नहीं। कोई मेरा सहायक नहीं। उनके नेत्र सजल हो गये।

सामने मेजपर ठेकेदारोंके बिल रक्खे हुए थे। वे कई सप्ताहों-से योंही पड़े थे। सरदार साहबने उन्हें खोलकर भी न देखा था आज इस आत्मिक ग्लानि और नैराश्यकी अवस्थामें उन्होंने इन बिलोंको सतृष्ण आंखोंसे देखा। जरासे इशारेपर ये सारी कठि-नाइयां दूर हो सकती हैं। चपरासी और क्लर्क केवल मेरी सम्मति के सहारे सब कुछ कर लेंगे। मुझे जबान हिलानेकी भी जरूरत नहीं। न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। इन विचारोंका इतना

रामाने उन्हें बहुत उदास और मलिनमुख देखा। उसने बार-बार कहा था कि बड़े इञ्जिनियरके खानसामाको इनाम दो, हेड क्लर्क की दावत करो, मगर सरदार साहबने उसकी बात न मानी थी। इसलिये जब उसने सुना कि उनका दरजा घटा और बदली भी हुई तब उसने बड़ी निर्दयतासे अपने व्यंग-बाण चलाये। मगर इस वक्त उन्हें उदास देखकर उससे न रहा गया। बोली, क्यों इतने उदास हो? सरदार साहबने उत्तर दिया, क्या करूं, हँसूं? रामाने गम्भीर स्वरसे कहा, हँसना ही चाहिये। रोये तो वह, जिसने कौड़ियोंपर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो—जिसने रुपयोंपर अपना धर्म बेचा हो। यह बुराईका दण्ड नहीं है। यह भलाई और सज्जनताका दण्ड है। इसे सानन्द झेलना चाहिये।

यह कहकर उसने पतिकी ओर देखा तो नेत्रोंमें सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखाई दिया। सरदार साहबने भी उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा। उनकी हृदयेश्वरीका मुखारविन्द सच्चे आमोदसे विकसित था। उसे गले लगाकर वे बोले, रामा! मुझे तुम्हारी ही सहानुभूतिकी जरूरत थी अब मैं इस दण्डको सहर्ष सहूँगा।



पंच परमेश्वर

१

जुम्मन शेख और अलगू चौधरीमें गाढ़ी मित्रता थी। साझेमें खेती होती थी। कुछ लेन-देनमें भी साझा था। एकको दूसरेपर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगूको सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, तब जुम्मनपर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पानका व्यवहार था, न धर्मका नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रताका मूलमन्त्र भी यही है।

इस मित्रताका जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मनके पूज्य पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगूने गुरुजीकी बहुत सेवा की—खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षणके लिये भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगूको आध घण्टेतक कितावोंसे मुक्त कर देती थी। अलगूके पिता पुराने विचारोंके मनुष्य थे। शिक्षाकी अपेक्षा उन्हें गुरुकी सेवा-शुश्रूषापर अधिक विश्वास था। कहते थे कि विद्या पढ़नेसे नहीं आती, जो कुछ होता है गुरुके आशीर्वादसे होता है। बस, गुरुजीकी कृपा दृष्टि चाहिये। अतएव यदि अलगूपर जुमराती शेखके आशीर्वाद अथवा सत्सङ्ग

का कुछ फल न हुआ तो वह यह मानकर सन्तोष कर लेगा कि विद्योपार्जनमें मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य हीमें न थी तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वादके लायक न थे। उन्हें अपने सोटेपर अधिक भरोसा था और इसी सोटेके प्रतापसे आज आसपासके गावोंमें जुम्मनकी पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रिहननामे या बैनामेपर कचहरीका मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्केका डाकिया, कांस्टेबिल और तहसीलका चपरासी—सब उनकी कृपाकी आकांक्षा करते थे। अतएव अलगूका मान उनके धनके कारण था तो जुम्मन शेख अपनी अमोल विद्यासे ही सबके आदर-पात्र बने थे।

२

जुम्मन शेखकी एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उनके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी। परन्तु उनके निकट सम्बन्धियोंमें कोई न था। जुम्मनने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम चढ़वा ली थी। जबतक दान-पत्रकी रजिस्टरी न हुई थी तबतक खाला जानका खूब आदर सत्कार किया गया, उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलुवे-पुलावकी वर्षा सी की गई, पर रजिस्टरीकी मुहरने इन खातिरदारियोंपर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मनकी पत्नी करीमन रोटियोंके साथ कड़वी बातोंके कुछ तेज तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खाला-जानको प्राय नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं।

बुढ़िया न जाने कबतक जियेगी। दो तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है मानो मोल ले लिया है। बघारी दालके बिना रोटियां नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेटमें झोंक चुके उतनेसे तो अबतक एक गांव मोल ले लेते।

कुछ दिन खाला-जानने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मनसे शिकायत की। जुम्मनने स्थानीय कर्मचारी—गृह-स्वामिनीके प्रबन्धमें दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और योंही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्तमें एक दिन खालाने जुम्मनसे कहा, बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना अलग पका-खा लूंगी।

जुम्मनने धृष्टताके साथ उत्तर दिया, रुपये क्या यहां फलते हैं? खालाने नम्रतासे कहा, मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिये भी कि नहीं? जुम्मनने गम्भीर स्वरसे जवाब दिया, तो कोई यह थोड़े समझता है कि मौतसे लड़कर आई हो?

खाला बिगड़ गईं। उन्होंने पंचायत करनेकी धमकी दी। जुम्मन हंसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरनको जालकी तरफ जाते देखकर मन ही-मन हंसता है। वे बोले, हां जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात दिनकी खटपट पसन्द नहीं।

पंचायतमें किसकी जीत होगी, इस विषयमें जुम्मनको कुछ भी सन्देह न था। आस-पासके गांवमें ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहोंका ऋणी न हो? ऐसा कौन था जो उनको शत्रु बनानेका साहस कर सके? किसमें इतना बल था जो उनपर

का कुछ फल न हुआ तो वह यह मानकर सन्तोषकर लेगा कि विद्योपार्जनमे मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या उसके भाग्य हीमे न थी तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वय आशीर्वादके लायक न थे। उन्हें अपने सोटेपर अधिक भरोसा था और इसी सोटेके प्रतापसे आज आसपासके गावोंमें जुम्मनकी पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रिहननामे या बैनामेपर कचहरीका मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्केका डाकिया, कांस्टेबिल और तहसीलका चपरासी—सब उनकी कृपाकी आकांक्षा करते थे। अतएव अलगूका मान उनके धनके कारण था तो जुम्मनशेख अपनी अमोल विद्यासे ही सबके आदर-पात्र बने थे।

२

जुम्मन शेखकी एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उनके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी। परन्तु उसके निकट सम्बन्धियोंमें कोई न था। जुम्मनने लम्बे-चौडे वादे करके वह मिलकियत अपने नाम चढ़वा ली थी। जबतक दान-पत्रकी रजिस्टरी न हुई थी तबतक खाला जानका खूब आदरस त्कार किया गया, उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलुवे-पुलावकी वर्षा सी की गई, पर रजिस्टरीकी मुहरने इन खातिरदारियोंपर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मनकी पत्नी करीमन रोटियोंके साथ कडवी बातोंसे कुछ तेज तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खाला-जानको प्राय नित्य ही ऐसी बात सुननी पड़ती थी।

बुढिया न जाने कबतक जियेगी। दो तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है मानो मोल ले लिया है। बघारी दालके बिना रोटियां नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेटमें झोंक चुके उतनेसे तो अबतक एक गाव मोल ले लेते।

कुछ दिन खाला-जानने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मनसे शिकायत की। जुम्मनने स्थानीय कर्मचारी—गृह स्वामिनीके प्रबन्धमें दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और योंही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्तमें एक दिन खालाने जुम्मनसे कहा, बेटा! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना अलग पका-खा लूंगी।

जुम्मनने धृष्टताके साथ उत्तर दिया, रुपये क्या यहां फलते हैं? खालाने नम्रतासे कहा, मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिये भी कि नहीं? जुम्मनने गम्भीर स्वरसे जवाब दिया, तो कोई यह थोड़े समझता है कि मौतसे लड़कर आई हो?

खाला बिगड़ गईं। उन्होंने पंचायत करनेकी धमकी दी। जुम्मन हंसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरनको जालकी तरफ जाते देखकर मन-ही-मन हंसता है। वे बोले, हां जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात दिनकी खटपट पसन्द नहीं।

पंचायतमें किसकी जीत होगी, इस विषयमें जुम्मनको कुछ भी सन्देह न था। आस-पासके गांवमें ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहोंका ऋणी न हो? ऐसा कौन था जो उनको शत्रु बनानेका साहस कर सके? किसमें इतना बल था जो उनका

सामना कर सके ? आसमानके फरिस्ते तो ५
ही नहीं ।

३

इसके बाद कई दिनतक बूढ़ी खाला हाथमें
आस-पासके गावोंमें दौड़ती रही । कमर झु०
थी । एक-एक पग चलना दूभर था । मगर ५.
उसका निर्णय कराना जरूरी था ।

विरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके
दु:खके आंसू न बहाये हों । किसीने तो योंही ऊ
हां करके टाल दिया । किसीने इस अन्यायपर
दी और कहा, कब्रमें पांव लटके हुए हैं, आज ५
दिन हो, पर हवस नहीं मानती । अब तुम्हें क्या
खाओ और अल्लाका नाम लो । तुम्हें खेती-५।
काम ? कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें हास्यके
अच्छा अवसर मिला । झुकी हुई कमर, पोपला
बाल—जब इतनी सामग्रिया एकत्र हों तब हंसी ·
ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दीनवत्सल पुरुष बहुत
उस अबलाके दुखड़ेको गौरसे सुना हो और ५स
हो । चारों ओरसे घूम-घामकर बेचारी अलगू
आई । लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, बेटा
भरके लिये मेरी पञ्चायतमें चले आना ।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी ? कई ५,
आवेंगे ही ?

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आई हूँ आने न आनेका अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आनेको मैं आ जाऊँगा, मगर पचायतमें मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा ?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उनसे बिगाड नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाडके डरसे ईमानकी बात न कहोगे ?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञानकी सारी सम्पत्ति लुट जाय तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवालका कोई उत्तर न दे सके। पर उनके हृदयमें यह शब्द गूंज रहे थे।

'क्या बिगाडके भयसे ईमानकी बात न कहोगे ?'

४

सन्ध्या समय एक पेडके नीचे पचायत बैठी। शेख जुम्मनने पहले हीसे फर्श बिछा रक्खा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू आदिका प्रबन्ध भी किया था। हां, वे स्वय अलबत्ता अलगू चौधरीके साथ जरा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पचायतमें आ जाता था तब दबे हुए सलामसे उसका शुभागमन करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियोंकी कलरव युक्त पचायत पेड़ोंपर बैठी तब यहां भी पचायत आरम्भ हुई। फर्शकी एक-एक अंगुल जमीन भर गई, पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयोंमेंसे केवल वही लोग पधारे थे जिन्हें जुम्मनसे अपनी

कुछ कमर निकालती थी। एक कोनेमें आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलोंसे अधिक धूआं निकलता था या चिलमके दमोंसे। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपसमें गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गांवके कुत्ते इस जमावको भोज समझकर झुण्ड-के-झुण्ड जमा हो गये थे।

पच लोग बैठ गये तो बूढ़ी खालाने उनसे विनती की।

"पचो! आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजेके नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मनने मुझे हीनहयात रोटी-कपडा देना कबूल किया था। सालभर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटे, पर अब रात दिनका रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेटभर रोटी मिलती है और न तनका कपडा। बेकस बेवा हू। कचहरी-दरबार कर नहीं सकती। तुम्हारे सिवाय और किसे अपना दु ख सुनाऊ। तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राहपर चलू। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, मेरे मुहपर थप्पड़ मारो। जुम्मनमें बुराई देखो तो उसे समझाओ। क्यो एक बेकसकी आह लेता है? पचोंका हुक्म सर-माथेपर चढ़ाऊ गी।

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियोंको जुम्मनने अपने गांवमें बसा लिया था, बोले, जुम्मन मियां! किसे पच बदते हो? अभीसे इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पच कहेंगे वही मानना पड़ेगा।

जुम्मनको इस समय सदस्योंमें विशेषकर वही लोग दीख पड़े जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले, पञ्चका हुक्म अल्लाहका हुक्म है। खालाजान जिसे चाहे बदें, मुझे कोई उज्र नहीं।

खालाने चिल्लाकर कहा, अरे अल्लाहके बन्दे! पञ्चोंके नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो!

जुम्मनने क्रोधसे कहा, अब इस वक्त मेरा मुंह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पडी है, जिसे चाहो पञ्च बदो।

खालाजान जुम्मनके आक्षेपको समझ गईं। वह बोली, बेटा! खुदासे डरो। पञ्च न किसीके दोस्त होते है न किसीके दुश्मन। कैसी बात कहते हो? और तुम्हारा किसीपर विश्वास न हो तो जाने दो, अलगू चौधरीको तो मानते हो? लो, मैं उन्हींको सरपञ्च बदती हूँ।

जुम्मन शेख आनन्दसे फूल उठे, परन्तु भावोंको छिपाकर बोले अलगू चौधरी ही सही। मेरे लिये जैसे रामधन मिश्र वैसे अलगू।

अलगू इस झमेलेमें फँसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले, खाला! तुम जानती हो कि मेरी जुम्मनसे गाढ़ी दोस्ती है।

खालाने गम्भीर स्वरसे कहा, बेटा! दोस्तीके लिये कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पचके दिलमें खुदा बसता है। पचोंके मुहसे जो बात निकलती है वह खुदाकी तरफसे निकलती है। अलगू चौधरी सरपच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मनके दूसरे विरोधियोंने बुढ़ियाको मनमें बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, शेख जुम्मन! हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पडा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं। मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाहमें बराबर हो। तुमको पंचोंसे जो कुछ अर्ज करना हो, करो।

जुम्मनको पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावेकी बातें कर रहा है, अतएव शांत-चित्त होकर बोले, पंचो! तीन साल हुए खालाजानने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें हीनहयात, खाना-कपडा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आजतक मैंने खालाजानको कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हे अपनी माके समान समझता हूँ उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है, मगर औरतोंमें जरा अन-बन रहती है। इसमें मेरा क्या वश है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग मांगती हैं। जायदाद जितनी है वह पंचोंमें छिपी नहीं है। उसमे इतना मुनाफा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूं। इसके अलावा हिब्बानामेमें माहवार खर्चका कोई जिक्र नहीं, नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेलेमें न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइन्द पंचोंको अख्तियार है जो फैसला चाहें करें।

अलगू चौधरीको हमेशा कचहरीसे काम पडता था, अतएव पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मनसे जिरह करनी आरम्भ की। एक-एक प्रश्न जुम्मनके हृदयपर हथौडीकी चोटकी तरह पडता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नोंपर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगूको क्या हो गया है? अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ

कैसी कैसी बातें कर रहा था। इतनी ही देरमें ऐसी काया-पलट हो गई कि मेरी जड खोदनेपर तुला हुआ है। न मालूम कबकी कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनोंकी दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख इसी सङ्कल्प विकल्पमें पडे हुए थे कि इतनेमें अलगूने फैसला सुनाया,—

जुम्मन शेख! पञ्चोंने इस मामलेपर विचार किया। उन्हें यह नीति-सङ्गत मालूम होता है कि खालाजानको माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खालाकी जायदादसे इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मनको खर्च देना मंजूर न हो तो हिब्बानामा रद्द समझा जाय।

५

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटेमें आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रुकासा व्यवहार करे और गलेपर छुरी फेरे! इसे समयके हेर फेरके सिवाय और क्या कहें? जिसपर पूरा भरोसा था उसने समय पडनेपर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरोंपर झूठे-सच्चे मित्रोंकी परीक्षा हो जाती है। यही कलियुगकी दोस्ती है! अगर लोग ऐसे कपटी, धोखेबाज न होते तो देशमें आपत्तियोंका प्रकोप क्यों होता? यह हैजा, प्लेग आदि व्याधियां दुष्कर्मोंके दण्ड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पञ्च अलगू चौधरीकी इस नीति परायणताकी प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे,

इसीका नाम पचायत है। दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया। दोस्ती दोस्तीकी जगह है, किन्तु धर्मका पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियोंके बल पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कबकी रसातलको चली जाती।

इस फैसलेने अलगू और जुम्मनको दोस्तीकी जड हिला दी। अब वे साथ साथ बाते करते नही दिखाई देते। इतना पुराना मित्रतारूपी वृक्ष सत्यका एक हल्का झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालूहीकी जमीनपर खडा था।

उनमे अब शिष्टाचारका अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरेकी आव-भगत ज्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवारसे ढाल मिलती है।

जुम्मनके चित्तमें मित्रकी कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घडी यह चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेनेका अवसर मिले।

६

अच्छे कामोंकी सिद्धिमें बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामोंकी सिद्धिमें यह बात नहीं। जुम्मनको भी बदला लेनेका अवसर जल्दी मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसरसे बैलोंकी एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाये थे। बैल पछाहीं जातिके सुन्दर, बडी-बडी सींगोंवाले। महीनोंतक आस पासके गांवोंके लोग उनके दर्शन करते रहे। दैवयोगसे जुम्मनकी पचायतके एक महीने बाद इस जोड़ीका एक बैल मर गया। जुम्मनने दोस्तोंसे कहा, यह दगाबाजीकी सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाय, पर खुदा

नेक बद सब देखता है। अलगूको सन्देह हुआ कि जुम्मनने बै को विष दिला दिया है। चौधराइनने भी जुम्मनपर ही इस दुर्घ टनाका दोषारोपण किया। उसने कहा, जुम्मनने कुछ कर कर दिया है। चौधराइन और करीमनमें इस विषयपर एक दिन खूब ही वाद विवाद हुआ। दोनों देवियोंने शब्द बाहुल्यकी नदी बहा दी। व्यङ्ग, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलङ्कारोंमें बातें हुईं। जुम्मनने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उसने अपनी पत्नीको डॉट डपटकर समझा दिया। वे उसे उस रण-भूमिसे हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरीने समझाने बुझाने-का काम अपने तर्कपूर्ण सोटेसे लिया।

अब अकेला बैल किस कामका ? उसका जोड़ा बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिये। गांवमें एक समझू साहु थे, वे इक्का-गाडी हांकते थे। गांवसे गुड, घी लादकर वे मण्डी ले जाते, मण्डीसे तेल, नमक भर लाते और गांवमें बेचते। इस बैलपर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन भरमें बेखटके तीन खेपें हों। आजकल तो एक ही खेपके लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाडीमें दौडाया, बाल-भौरीकीपहचानकराई, मोल-तोलकिया और उसे लाकर द्वारपर बाध ही दिया। एक महीनेमें दाम चुकानेका वादा ठहरा। चौधरीको भी गरज थी ही, घाटेकी परवाह न की।

समझू साहुने नया बैल पाया तो लगे रगेदने। वे दिनमें तीन तीन, चार चार खेपें करने लगे। न चारेकी फिक्र थी, न पानी की। बस, खेपोंसे काम था। मण्डी ले गये, वहां कुछ सूखा भूसा सामने

डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरीके घर थे तो चैनकी वशी बजती थी। छठे छमासे कभी बहलीमें जोते जाते, तब खूब उछलते कूदते और कोसोंतक दौडते जाते थे। वहा बैलराजको रातिब, साफ पानी, दली हुई अरहरकी दाल और भूसेके साथ खली और यही नहीं,कभी-कभी घीका स्वाद भी चखनेको मिल जाता था। शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सुहलाता था। कहां वह सुख-चैन, कहा यह आठो पहरकी खपन! महीने भरमें ही वह पिस-सा गया। इक्के का जुवा देखते ही उसका लोहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियां निकल आई थीं, पर था वह पानीदार, मारकी सहन न थी।

एक दिन चौथे खेपमें साहुजीने दूना बोझ लादा। दिन भरका थका जानवर, पैर न उठते थे। उसपर साहुजी कोडे फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोडकर चला। वह कुछ दूर दौडा और चाहा कि जरा दम ले लू पर साहुजीको जल्द घर पहुँचनेकी फिक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोडे बडी निर्दयतासे फटकारे। बैलने एक बार फिर जोर लगाया। पर अबकी बार शक्तिने जवाब दिया। वह धरतीपर गिर पडा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजीने बहुत पीटा, टांग पकड कर खींचा, नथुनोंमें लकड़ी ठूँस दी! पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहुजीको कुछ शङ्का हुई। उन्होंने बैलको गौरसे देखा, खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाडी कैसे घर पहुँचे। वे बहुत चीखे-चिल्लाये, पर देहातका रास्ता,

बच्चोंकी आँखोंकी तरह सांझ होते ही बन्द हो जाता है, कोई नज
न आया। आसपास कोई गांव भी न था। मारे क्रोधके उन्होंने
मरे हुए बैलपर और दरें लगाये और कोसने लगे, अभागे! तुझे
मरना ही था तो घर पहुँचकर मरता। ससुरा बीच रास्तेमें ही
मर रहा! अब गाडी कौन खींचे? इस तरह साहुजी खब जले-
भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचे थे, दो ढाई
सौ रुपये कमरमें बँधे थे। इसके सिवाय गाड़ीपर कई बोरे नमक-
के थे। अतएव छोडकर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे
गाडी पर ही लेट गये। वहीं रतजगा करनेकी ठान ली। चिलम
पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहुजी आधी राततक
नींदको बहलाते रहे, अपनी जानमें तो वे जागते ही रहे। पर पौ
फटते ही जो नींद टूटी और कमरपर हाथ रक्खा तो थैली
गायब! घबराकर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी
नदारद! अफसोसमें बेचारा सिर पीटने लगा और पछाड़ खाने
लगा, प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचा। सहुआइनने जब यह
बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरीको
गालियां देने लगीं, निगोडेने ऐसा कुलच्छना बैल दिया कि जन्म-
भरकी कमाई लुट गयी।

इस घटनाको हुए कई महीने बीत गये। अलगू जब अपने
बैलके दाम मांगते तब साहु और सहुआइन दोनों ही झल्लाये
हुए कुत्तोंकी तरह चढ बैठते और अंड बंड बकने लगते, वाह!
यहां तो सारे जन्मकी कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें
दामोंकी पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उसपर दाम मांगने चले

हैं। आखोंमे धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनियेके बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड्ढेमें मुह धो आओ तब दाम लेना, जी न मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भरके बदले दो महीना जोत लो। रुपया क्या लोगे?

चौधरीके अशुभचिन्तकोंकी कमी न थी। ऐसे अवसरोंपर वे भी एकत्र हो जाते और साहुजीके बर्रानेकी पुष्टि करते। इस तरह फटकारें सुनकर बेचारे चौधरी अपना-सा मुँह लेकर लौट आते, परन्तु डेढ सौ रुपयेसे इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वे भी गरम पडे। साहुजी बिगडकर लाठी ढूढने घर चले गये। अब सहुआइनजीने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाईकी नौबत आ पहुँची। सहुआइनने घरमें घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। शोरगुल सुनकर गाँवके भलेमानुस जमा हो गये। उन्होंने दोनोंको समझाया। साहुजीको दिलासा देकर घरसे निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह सिर फुड़ौवलसे काम न चलेगा। पचायत करा लो। कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगूने भी हामी भर ली।

७

पचायतकी तैयारियां होने लगीं। दोनों पक्षोंने अपने-अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्षके नीचे फिर पचायत बैठी। वही सन्ध्याका समय था। खेतोंमें कौवे पचायत कर रहे थे। विवाद मस्त विषय यह था कि मटरकी

फलियोंपर उनका स्वत्व है या नहीं और जबतक यह प्रश्न हल न हो जाय तबतक वे रखवालेकी पुकारपर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेडकी डालियोंपर बैठी शुक-मडलीमें यह प्रश्न छिडा हुआ था कि मनुष्यको उन्हें बेमुरौवत कहनेका क्या अधिकार है, जब उसे स्वय अपने मित्रोंको दगा देनेमें भी सकोच नहीं होता।

पचायत बैठ गई तो रामधन मिश्रने कहा, अब देरी क्यों? पचोंका चुनाव हो जाना चाहिये। बोलो चौधरी, किस किसको 'पच बदते हो ?

अलगूने दीनभावसे कहा, समझू साहु ही चुन लें।

समझू खडे हुए और कडककर बोले, मेरी ओरसे जुम्मन शेख।

जुम्मनका नाम सुनते ही अलगू चौधरीका कलेजा धक धक करने लगा, मानो किसीने अचानक थप्पड मार दिया हो। रामधन अलगूके मित्र थे। वे बातको ताड़ गये। पूछा, क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नहीं ?

चौधरीने निराश होकर कहा, नहीं, मुझे क्या उज्र होगा ?

× × × ×

अपने उत्तरदायित्वका ज्ञान बहुधा हमारे सकुचित व्यवहारों का सुधार होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ दर्शक बन जाता है।

पत्र-सम्पादक अपनी शान्ति कुटीरमें बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रताके साथ अपनी प्रबल लेखनीसे मन्त्रि-

मण्डलपर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वय मन्त्रिमण्डलमे सम्मिलित होता है। मण्डलके भवनमें पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्वका ज्ञान है। नवयुवक युवावस्थामे कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल-कलङ्क समझते है,परन्तु थोडे ही समयमें परिवारका बोझ सिरपर पडते ही वही अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्त-चित्त हो जाता है यह भी उत्तरदायित्वके ज्ञानका ही फल है।

जुम्मन शेखके मनमें भी सरपचका उच्चस्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारीका भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्मके सर्वोच्च आसनपर बैठा हूँ। मेरे मुहसे इस समय जो कुछ निकलेगा वह देववाणीके सदृश है और देववाणीमें मेरे मनोविकारोंका कदापि समावेश न होना चाहिये। मुझे सत्यसे जौ भर टलना उचित नहीं।

पञ्चोंने दोनों पक्षोंसे सवाल-जवाब करने शुरू किये। बहुत देरतक दोनों दल अपने-अपने पक्षका समर्थन करते रहे। इस विषयमें तो सब सहमत थे कि समझूको बैलका मूल्य देना चाहिये, परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैलके मर जानेसे समझूको हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल्यके अतिरिक्त समझूको कुछ दण्ड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसीको पशुओंके साथ ऐसी निर्दयता करनेका

साहस न हो। अन्तमें जुम्मनने फैसला सुनाया, अलगू चौधरी और समझू साहु! पञ्चोंने तुम्हारे मुआमलेपर अच्छी तरह विचार किया। समझूको उचित है कि बैलका पूरा दाम दे। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेनेका आग्रह न करते। बैलकी मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बडा कठिन परिश्रम कराया गया और उसके दाने-चारेका कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले, समझूने बैलको जान बूझकर मारा है। अतएव उनसे दण्ड लेना चाहिये।

जुम्मन बोले, यह दूसरा रुवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं।

झगडू साहुने कहा, समझूके साथ कुछ रियायत होनी चाहिये।

जुम्मन बोले, यह अलगू चौधरीकी इच्छापर है। वे रियायत करें तो उनकी भलमनसी है।

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खडे हुए और जोरसे बोले, पच परमेश्वरकी जय!

चारों ओरसे प्रतिध्वनि हुई—पच परमेश्वरकी जय!

प्रत्येक मनुष्य जुम्मनकी नीतिको सराहता था—इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्यका काम नहीं, पचमें परमेश्वर वास करते हैं। यह उन्हींकी महिमा है। पचके सामने खोटेको कौन खरा कर सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगूके पास आये और उनके गले लिपटकर बोले, भैया जबसे तुमने मेरी पचायत की, तबसे मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पचके पदपर बैठकर न कोई किसीका दोस्त होता है न दुश्मन। न्यायके सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पचकी जबानसे खुदा बोलता है।

अलगू रोने लगे। इस पानीसे दोनोंके दिलोंकी मैल धुल गई। मित्रताकी मुरझाई लता फिर हरी हो गई।

नमकका दारोगा

१

जब नमकका नया विभाग बना और ईश्वरदत्त वस्तुके व्यवहार करनेका निषेध हो गया तो लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकारके छल प्रपचोंका सूत्रपात हुआ, कोई घूससे काम निकालता था, कोई चालाकीसे। अधिकारियोंके पौबारह थे। पटवारीगिरीका सर्वसम्मानित पद छोड छोडकर लोग इस विभागकी बरकन्दाजी करते थे। इसके दारोगा पदके लिये तो वकीलोंका भी जी ललचता था। यह वह समय था जब अङ्गरेजी शिक्षा और ईसाई मतको लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसीका प्राबल्य था। प्रेमकी कथाए और शृगाररसके काव्य पढकर फारसीदां लोग सर्वोच्च पदोंपर नियुक्त हो जाया करते थे। मुशी वशीधर भी जुलेखाकी विरह-कथा समाप्त करके मजनू और फरहादके प्रेम-वृत्तान्तको नल और नीलकी लडाई और अमेरिकाके आविष्कारसे अधिक महत्त्वकी बाते समझते हुए रोजगारकी खोजमें निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, बेटा! घरकी दुर्दशा देख रहे हो। ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। लड़कियां हैं, वह घास-फूसकी तरह बढती चली जाती हैं। मैं करारेपरका वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ू। अब तुम्हीं

घरके मालिक-मुख्तार हो। नौकरीमे ओहदेकी ओर ध्यान मत देना, यह तो पीरका मजार है। निगाह चढावे और चादरपर रखनी चाहिये। ऐसा काम ढूढना जहां कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासीका चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और फिर घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसीसे उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसीसे उसमे बरकत होती है। तुम स्वय विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषयमे विवेककी बडी आवश्यकता है। मनुष्यको देखो, उसकी आवश्यकताको देखो और अवसर देखो, उसके उपरान्त जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमीके साथ कठोरता करनेमें लाभ-ही-लाभ है। लेकिन बेगरजको दांवपर पाना जरा कठिन है। इन बातोंको निगाहसे बाध लो। यह मेरी जन्म भरकी कमाई है।

इस उपदेशके बाद पिताजीने आशीर्वाद दिया। वशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यानसे सुनीं और तब घरसे चल खडे हुए। इस विस्तृत ससारमें उनके लिये धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुनसे चले थे, जाते-ही-जाते नमक-विभागके दारोगा-पदपर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो कुछ ठिकाना ही न था। वृद्ध मुशीजीको यह सुख-सवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन लोग कुछ नरम पडे, कलवार की आशालता लहलहाई। पडोसियोंके हृदयोंमें शूल उठने लगी।

२

जाडेके दिन थे और रातका समय। नमकके सिपाही, चौकीदार नशेमें मस्त थे। मुंशी वशीधरको यहां आये अभी छः महीनोंसे अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोडे समयमें ही उन्होंने अपनी कार्य-कुशलता और उत्तम आचारसे अफसरोंको मोहित कर लिया था। अफसर लोग उनपर बहुत विश्वास करने लगे। नमकके दफ्तरसे एक मील पूर्वकी ओर जमुना बहती थी उसपर नावोंका एक पुल बना हुआ था। दारोगाजी किवाड बन्द किये मीठी नींद सोते थे। अचानक आंख खुली तो नदीके प्रवाहकी जगह गाड़ियोंकी गड़गडाहट तथा मल्लाहोंका कोलाहल सुनायी दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाडिया क्यों नदीके पार जाती हैं? अवश्य कुछ न-कुछ गोलमाल है। तर्कने भ्रमको पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमचा जेबमें रखा और बात-की बातम घोडा बढाते हुए पुलपर आ पहुँचे। गाडियोंकी एक लम्बी कतार पुलके पार जाते देखी। डाटकर पूछा, किसकी गाडिया हैं?

थोड़ी देरतक सन्नाटा रहा। आदमियोंमे कुछ कानाफूसी हुई, तब आगेवालेने कहा—पण्डित अलोपीदीनकी।

"कौन पण्डित अलोपीदीन?"

"दातागजके।"

मुशी वशीधर चौंके। पण्डित अलोपीदीन इस इलाकेके सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपयेका लेन देन करते थे, इधर छोटेसे बडे कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा चौडा था। बड़े चलते-पुरजे आदमी थे। अंग्रेज

अफसर उनके इलाकेमें शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुन्शीजीने पूछा, गाड़ियां कहाँ जायँगी ? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्नपर कि इसमें है क्या, फिर सन्नाटा छा गया। दारोगा साहबका सन्देह और भी बढ़ा। कुछ देरतक उत्तरकी बाट देखकर वह जोरसे बोले, क्या तुम सब गूंगे हो गये हो? हम पूछते है, इनमें क्या लदा है ?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़ेको एक गाड़ीसे मिलाकर बोरेको टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमकके ढेले थे।

२

पण्डित अलोपीदीन अपने सजीले रथपर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानोंने घबराये हुए आकर जगाया और बोले—महाराज! दारोगाने गाड़ियां रोक दी हैं और घाटपर खड़े आपको बुलाते हैं।

पण्डित अलोपीदीनका लक्ष्मीजीपर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसारका तो कहना ही क्या, स्वर्गमें भी लक्ष्मीका ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मीके ही खिलौने हैं, इन्हे वह जैसे चाहती नचाती है। लेटे-ही-लेटे गर्वसे बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पण्डितजीने बड़ी निश्चिन्ततासे पानके बीड़े लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगाके पास आकर बोले, बाबूजी आशीर्वाद। कहिये, हमसे ऐसा कौन सा अपराध हुआ कि गाड़ियां

रोक दी गयी। हम ब्राह्मणोंपर तो आपकी कृपादृष्टि रहनी चाहिये।

वंशीधर रुखाईसे बोले, सरकारी हुक्म।

पं० अलोपीदीनने हँसकर कहा, हम सरकारी हुक्मको नहीं जानते और न सरकारको। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घरका मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थका कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधरसे जाय और इस घाटके देवताको भेंट न चढ़ावे। मैं तो आपकी सेवामें स्वयं ही आ रहा था। वंशीधरपर इस ऐश्वर्यकी मोहिनी वंशीका कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारीकी नई उमंग थी। कड़ककर बोले, हम उन नमकहरामोंमें नहीं हैं जो कौड़ियों-पर अपना ईमान बेचते फिरते है। आप इस समय हिरासतमें हैं। सवेरे आपका कायदेके अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातोंकी फुर्सत नहीं है। जमादार बदलू सिंह! तुम इन्हें हिरासतमें ले चलो, मैं हुक्म देता हूं।

पण्डित अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाड़ीवानोंमें हलचल मच गयी। पंडितजीके जीवनमें कदाचित यह पहला ही अवसर था कि पंडितजीको ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलू सिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोबके मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडितजीने धर्मको धनका ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दण्ड लड़का है। माया मोहके जालमें नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीनभावसे बोले, बाबू साहब! ऐसा न कीजिये, हम मिट जायंगे।

अफसर उनके इलाकेमें शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुन्शीजीने पूछा, गाड़िया कहाँ जायँगी? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्नपर कि इसमे है क्या, फिर सन्नाटा छा गया। दारोगा साहबका सन्देह और भी बढा। कुछ देरतक उत्तर की बाट देखकर वह जोरसे बोले, क्या तुम सब गूंगे हो गये हो? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोडेको एक गाडीसे मिलाकर बोरेको टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमकके ढेले थे।

२

पण्डित अलोपीदीन अपने सजीले रथपर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाडीवानोंने घबराये हुए आकर जगाया और बोले—महाराज! दारोगाने गाडियां रोक दी हैं और घाटपर खडे आपको बुलाते हैं।

पण्डित अलोपीदीनका लक्ष्मीजीपर अखड विश्वास था। वह कहा करते थे कि ससारका तो कहना ही क्या, स्वर्गमें भी लक्ष्मीका ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मीके ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती नचाती है। लेटे-ही-लेटे गर्वसे बोले, चलो हम आते हैं। यह कह कर पण्डितजीने बड़ी निश्चिन्ततासे पानके बीडे लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढे हुए दारोगाके पास आकर बोले, बाबुजी आशीर्वाद। कहिये, हमसे ऐसा कौन सा अपराध हुआ कि गाड़ियां

रोक दी गयीं। हम ब्राह्मणोंपर तो आपकी कृपादृष्टि रहनी चाहिये।

वशीधर रुखाईसे बोले, सरकारी हुक्म।

प० अलोपीदीनने हंसकर कहा, हम सरकारी हुक्मको नहीं जानते और न सरकारको। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घरका मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थका कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधरसे जाय और इस घाटके देवताको भेट न चढावे। मैं तो आपकी सेवामें स्वय ही आ रहा था। वशीधरपर इस ऐश्वर्यकी मोहिनी वशीका कुछ प्रभाव न पडा। ईमानदारीकी नई उमग थी। कडककर बोले, हम उन नमकहरामोंमें नहीं हैं जो कौडियों-पर अपना ईमान बेचते फिरते है। आप इस समय हिरासतमे हैं। सबेरे आपका कायदेके अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातोंकी फुर्सत नही है। जमादार बदलू सिंह! तुम इन्हें हिरासतमें ले चलो, मैं हुक्म देता हू।

पण्डित अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाडीवानोंमें हलचल मच गयी। पण्डितजीके जीवनमें कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पण्डितजीको ऐसी कठोर बातें सुननी पडीं। बदलू सिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोबके मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पण्डितजीने धर्मको धनका ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दण्ड लड़का है। माया मोहके जालमें नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीनभावसे बोले, बाबू साहब! ऐसा न कीजिये, हम मिट जायगे।

इज्जत धूलमें मिल जायगी। हमारा अपमान करनेसे आपके क्या हाथ आवेगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोडे ही हैं?

वशीधरने कठोर स्वरमें कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीनने जिस सहारेको चट्टान समझ रखा था, वह पैरोंके नीचेसे खिसका हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन-ऐश्वर्यको कडी चोट लगी। किन्तु अभीतक धनकी सांख्यिक शक्तिका पूरा भरोसा था। अपने मुख्तारसे बोले, लालाजी, एक हजारका नोट बाबू साहबकी भेट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वशीधरने गरम होकर कहा, एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्गसे नहीं हटा सकते।

धर्मकी इस बुद्धिहीन धृष्टता और देव-दुर्लभ त्यागपर धन, बहुत झुंझलाया। अब दोनों शक्तियोंमें संग्राम होने लगा। धनने उछल उछलकर आक्रमण करने आरम्भ किये। एकसे पांच, पांच से दस, दससे पन्द्रह और पन्द्रहसे बीस हजारतक नौबत पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरताके साथ इस बहुसंख्यक सेनाके सम्मुख अकेला पर्वतकी भांति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वशीधरने अपने जमादारको ललकारा। बदलू सिंह मनमें दारोगाजीको गालियां देता हुआ पण्डित अलोपीदीनकी ओर बढ़ा। पण्डितजी घबडाकर दो-तीन कदम पीछे हट गये। अत्यन्त

दीनतासे बोले, बाबू साहब, ईश्वरके लिये मुझपर दया कीजिये मैं पचीस हजारपर निपटारा करनेको तैयार हूँ।

"असम्भव बात है।"

"तीस हजार पर ?"

"किसी तरह भी सम्भव नहीं ?"

"क्या चालीस हजारपर भी नहीं ?"

"चालीस हजार नहीं, चालीस लाखपर भी असम्भव है। बदलूसिंह ! इस आदमीको अभी हिरासतमें ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।"

धर्मने धनको पैरोंतले कुचल डाला। अलोपीदीनने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्यको हथकड़ियां लिये हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश, कातर दृष्टिसे देखने लगे। इसके बाद यकायक मूर्छित होकर गिर पड़े।

४

दुनिया सोती थी, पर दुनियाकी जीभ जागती थी। सवेरे ही देखिये तो बालक वृद्ध सबके मुँहसे यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिये वही पण्डितजीके इस व्यवहारपर टीका टिप्पणी कर रहा था, निन्दाकी बौछारें हो रही थीं, मानो संसारसे अब पापका पाप कट गया। पानीको दूधके नामसे बेचनेवाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरनेवाले अधिकारीवर्ग, रेलमें बिना टिकट सफर करनेवाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार, यह सब के सब देवताओंकी भांति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पण्डित अलोपीदीन अभियुक्त होकर कान्स्टेबलोंके

साथ, हाथोंमें हथकड़ियां, हृदयमें ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जासे गर्दन झुकाये अदालतकी तरफ चले तो सारे शहरमें हलचल मच गई। मेलोंमें कदाचित् आंखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़के मारे छत और दीवारमें कोई भेद न रहा।

किन्तु अदालतमें पहुँचनेकी देर थी। पण्डित अलोपीदीन इस अगाध वनके सिंह थे। अधिकारीवर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील-मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली चपरासी तथा चौकीदार तो उनके विना मोलके गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफसे दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इस-लिये नहीं कि अलोपीदीनने क्यों यह कर्म किया, वल्कि इसलिये कि वह कानूनके पजेमें कैसे आये? ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्यसाधन करनेवाला धन और अनन्य वाचालता हो वह क्यों कानूनके पजेमें आवे। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परतासे इस आक्रमणको रोकनेके निमित्त वकीलोंकी एक सेना तैयार की गई। न्यायके मैदानमें धर्म और धनमें युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्यके सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषणके अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किन्तु लोभसे डांवाडोल।

यहांतक कि मुंशीजीको न्याय भी अपनी ओरसे कुछ खिंचा हुआ देख पड़ता था। वह न्यायका दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियोंपर पक्षपातका नशा छाया हुआ था। किन्तु पक्षपात और न्यायका क्या मेल, जहां पक्षपात हो, वहां न्यायकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकद्दमा शीघ्र ही समाप्त हो गया।

डिप्टी मैजिस्ट्रेटने अपनी तजवीजमें लिखा, पडित अलोपीदीनके विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बडे भारी आदमी हैं। यह बात कल्पनासे बाहर है कि उन्होंने थोडे लाभके लिये ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमकके दारोगा मुशी वशीधरका अधिक दोप नहीं है, लेकिन यह वडे खेदकी बात है कि उनकी उद्दण्डता और अविचारके कारण एक भलेमानसको कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काममें सजग और सचेत रहता है, किन्तु नमकके मुहकमेकी वढ़ी हुई नमकहलालीने उसके विवेक और बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया। भविष्यमें उसे होशियार रहना चाहिये।

वकीलोंने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पडित अलोपीदीन मुस्कुराते हुए बाहर निकले। स्वजन बान्धवोंने रुपयोंकी लूट की। उदारताका सागर उमड पडा। उसकी लहरोंने अदालत की नींवतक हिला दी। जब वशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यग्यबाणोंकी वर्षा होने लगी। चपरासियोंने झुक-झुककर सलाम किये। किन्तु इस समय एक-एक कटुवाक्य एक-एक सकेत उनकी गर्वाग्निको प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित इस मुकदमेमें सफल होकर वह इस तरह अकडते हुए न चलते। आज उन्हें ससारका एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वता, लम्बी-चौडी उपाधियां, बड़ी बडी दाढ़ियां और ढीले चोगे एक भी सच्चे आदरके पात्र नहीं हैं।

वशीधरने धनसे वैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य्य था। कठिनतासे एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली-

का परवाना आ पहुँचा। कार्य्यपरायणताका दण्ड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेदसे व्यथित घरको चले। बूढे मुशीजी तो पहले ही कुडबुडा रहे थे कि चलते चलते इस लड़केको समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी। बस मनमानी करता है। हम तो कलार और कसाईके तगादे सहे, बुढ़ापेमें भगत बनकर बैठे और वहा बस वही सूखी तनख्वाह। हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन जो काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घरमें चाहे अन्धेरा, मस्जिदमें अवश्य दीया जलायेंगे। खेद ऐसी समझपर। पढ़ना लिखना सब अकारथ गया। इसके थोडे ही दिनों बाद, जब मुशी वशीधर इस दुरवस्थामें घर पहुचे और बूढे पिताजीने यह समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड लू। बहुत देरतक पछता पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोधमें कुछ कठोर बाते भी कहीं और यदि वशीधर वहासे टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकटरूप धारण करता। बुद्धा माताको भी दुःख-हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्राकी कामनाए मिट्टीमे मिल गई। पत्नीने तो १ड दिनतक सीधे मुहसे बात नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। सन्ध्याका समय था। बूढे मुशीजी बैठे राम-नामकी माला फेर रहे थे। इसी समय उनके द्वारपर एक सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहियें बैलोंकी जोटी, उनके गर्दनोंमें नीले धागे, सींग पीतलसे चढ़ी हुई। कई नौकर लाठियां कधोपर रखे साथ थे।

मुन्शीजी अगुआनीको दौडे। देखा तो पण्डित अलोपीदीन हैं। झुककर दण्डवत की और लल्लो-चप्पोकी बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वारपर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुह दिखावें, मुहमें तो कालिख लगी हुई है। किन्तु क्या करें, लडका अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुह छिपाना पडता? ईश्वर निरसन्तान चाहे रक्खे, पर ऐसी सन्तान न दे।

अलोपीदीनने कहा, नहीं भाई साहब ऐसा न कहिये।

मुन्शीजीने चकित होकर कहा, ऐसी सन्तानको और क्या कहूँ?

अलोपीदीनने वात्सल्यपूर्ण स्वरसे कहा, कुलतिलक और पुरुषोंकी कीर्त्ति उज्ज्वल करनेवाले ससारमे ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्मपर अपना सब कुछ अर्पण कर सके?

प० अलोपीदीनने वशीधरसे कहा, दारोगाजी, इसे खुशामद न समझिये, खुशामद करनेके लिये मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रातको आपने अपने अधिकार-बलसे मुझे अपनी हिरासतमें लिया था, किन्तु आज मैं स्वेच्छासे आपकी हिरासतमें आया हू। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियोंसे काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धनका गुलाम बनाकर छोड दिया। मुझे आज्ञा दीजिये कि आपसे कुछ विनय करू।

वशीधरने अलोपीदीनको आते देखा तो उठकर सत्कार किया, किन्तु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आये हैं। क्षमा प्रार्थनाकी चेष्टा

नहीं की. वरन् उन्हें अपने पिताकी यह ठकुरसुहातीकी बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पण्डितजीकी बातें सुनीं तो मनकी मैल मिट गयी। पण्डितजीकी ओर उड़ती हुई दृष्टिसे देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्वने अब लज्जाके सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले, यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिये। मैं धर्मकी बेडीमें जकड़ा हुआ था। नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथेपर।

अलोपीदीनने विनीत भावसे कहा, नदीके तटपर आपने मेरी प्रार्थना न स्वीकार की थी, किन्तु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले, मैं किस योग्य हूँ, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीनने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधरके सामने रखकर बोले, इस पदको स्वीकार कीजिये और अपने हस्ताक्षर कर दीजिये। मैं ब्राह्मण हूँ, जबतक यह सवाल पूरा न कीजियेगा, द्वारसे न हटूँगा।

मुंशी वंशीधरने उस कागजको पढ़ा तो कृतज्ञतासे आंखोंमें आंसू भर आये। पण्डित अलोपीदीनने उन्हें अपनी सारी जायदादका स्थायी मैनेजर नियत किया था। छः हजार वार्षिक वेतनके अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारीके लिये घोड़े, रहनेको बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वरसे बोले, पण्डितजी मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी इस उदारताकी प्रशंसा कर सकूँ। किन्तु मैं ऐसे उच्चपदके योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँसकर बोले, मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य-की ही जरूरत है।

वंशीधरने गंभीर भावसे कहा, यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुषकी सेवा करना मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। किन्तु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह अनुभव जो इन त्रुटियोंकी पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्यके लिये एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्यकी जरूरत है।

अलोपीदीनने कलमदानसे कलम निकाली और उसे वंशीधर-के हाथमें देकर बोले, न मुझे विद्वताकी चाह है, न अनुभवकी, न मर्मज्ञताकी, न कार्यकुशलताकी। इन गुणोंके महत्त्वका परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसरने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वताकी चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिये, अधिक सोच विचार न कीजिये, दस्तखत कर दीजिये। परमात्मासे यही मेरी प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदीके किनारेवाला, बेमुरौवत, उद्दण्ड, कठोर, परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रक्खे।

वंशीधरकी आँखें डबडबा आईं। हृदयके संकुचित पात्रमें इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडितजीकी ओर भक्ति और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा और कांपते हुए हाथसे मैनेजरीके कागजपर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीनने प्रफुल्ल होकर उन्हें गले लगा लिया।

—— ❀ ——

नहीं की, वरन् उन्हें अपने पिताकी यह ठकुरसुहातीकी बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पण्डितजीकी बातें सुनीं तो मनकी मैल मिट गयी। पण्डितजीकी ओर उड़ती हुई दृष्टिसे देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्वने अब लज्जाके सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले, यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिये। मैं धर्मकी बेडीमें जकड़ा हुआ था। नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथेपर।

अलोपीदीनने विनीत भावसे कहा, नदीके तटपर आपने मेरी प्रार्थना न स्वीकार की थी, किन्तु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले, मैं किस योग्य हूँ, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीनने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधरके सामने रखकर बोले, इस पदको स्वीकार कीजिये और अपने हस्ताक्षर कर दीजिये। मैं ब्राह्मण हूँ, जबतक यह सवाल पूरा न कीजियेगा, द्वारसे न हटूँगा।

मुंशी वंशीधरने उस कागजको पढ़ा तो कृतज्ञतासे आँखोंमें आंसू भर आये। पण्डित अलोपीदीनने उन्हें अपनी सारी जायदादका स्थायी मैनेजर नियत किया था। छ हजार वार्षिक वेतनके अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारीके लिये घोड़े, रहनेको बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वरसे बोले, पण्डितजी मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी इस उदारताकी प्रशंसा कर सकूँ। किन्तु मैं ऐसे उच्चपदके योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँसकर बोले, मुझे इस समय एक अयोग्य मनु की ही जरूरत है।

वंशीधरने गंभीर भावसे कहा, यों मैं आपका दास हूँ। आ जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुषकी सेवा करना मेरे लिये सौभाग्य बात है। किन्तु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह अनुभव ज इन त्रुटियोंकी पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्यके लिये एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्यकी जरूरत है।

अलोपीदीनने कलमदानसे कलम निकाली और उसे वंशीधर-के हाथम देकर बोले, न मुझे विद्वताकी चाह है, न अनुभवकी, न मर्मज्ञताकी, न कार्यकुशलताकी। इन गुणोंके महत्त्वका परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसरने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वताकी चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिये, अधिक सोच विचार न कीजिये, दस्तखत कर दीजिये। परमात्मासे यही मेरी प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदीके किनारेवाला, बेमुरौवत, उद्दण्ड, कठोर, परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रक्खे।

वंशीधरकी आँखें डबडबा आईं। हृदयके संकुचित पात्रमें इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पण्डितजीकी ओर भक्ति और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा और काँपते हुए हाथसे मैनेजरीके कागजपर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीनने प्रफुल्ल होकर उन्हें गले लगा लिया।

—— ✿ ——

दी। इस आत्म-विजयपर एक जातीय ड्रामा खेला गया, जिसके नायक हमारे शर्माजी ही थे। समाजकी उच्च श्रेणियोंमें इस आत्म त्यागकी चर्चा हुई और शर्माजीको अच्छी-खासी ख्याति प्राप्त हो गयी। इसीसे वह कई वर्षों से जातीय सेवामें लीन रहते थे। इस सेवाका अधिक भाग समाचार पत्रोंके अवलोकनमें बीतता था, जो जातीय सेवाका ही एक विशेष अङ्ग समझा जाता है। इसके अतिरिक्त वह पत्रोंके लिये लेख लिखते, सभाएं करते और उनमें फड़कते हुए व्याख्यान देते थे। शर्माजी "फ्री लाइब्रेरी" के सेक्रेटरी, "स्टुडेण्ट्स एसोसियेशन" के सभापति, "सोसल सर्विस लीग" के सहायक मन्त्री और प्राइमरी एजूकेशन कमिटीके सभ्यापक थे। कृषि-सम्बन्धी विषयोंसे उन्हें विशेष प्रेम था। पत्रोंमें जहां कहीं किसी नई खाद या किसी नवीन आविष्कारका वर्णन देखते, तत्काल उसपर लाल पेन्सिलसे निशान कर देते और अपने लेखोंमें उसकी चर्चा करते थे। किन्तु शहरसे थोड़ी दूरपर उनका एक बड़ा ग्राम होनेपर भी, वह अपने किसी असामीसे परिचित न थे। यहांतक कि कभी प्रयागके सरकारी ...ी भी सैर करने न गये थे।

वे कड़वे तेलसे उसकी सेवा किया करते, पर वह नीच स्वभावके अनुसार उन्हें काटनेसे न चूकता था। बेचारेको सालके ६ महीने पैरोंमें मरहम लगानी पड़ती। बहुधा नंगे पांव कचहरी जाते, पर कंजूस कहलानेके भय से जूतोंको हाथमें ले जाते। जिस ग्राममें शर्माजीकी जमींदारी थी, उसमें कुछ थोड़ासा हिस्सा उनका भी था। इस नातेसे कभी-कभी उनके पास आया करते थे। हां, तातीलके दिनोंमें गांव चले जाते। शर्माजीको उनका आकर बैठना नागवार मालूम होता, विशेषकर जब वह फैशनेबुल मनुष्योंकी उपस्थितिमें आ जाते। मुन्शीजी भी कुछ ऐसी स्थूल दृष्टिके पुरुष थे कि उन्हें अपना अनमिलापन बिलकुल दिखाई न देता। ...से बड़ी आपत्ति यह थी कि वे बराबर कुर्सीपर डट जाते। ...ो हंसोंमें कौवा। उस समय मित्रगण अङ्गरेजीमें बातें करते और बाबूलालको क्षुद्रबुद्धि, झक्की, बौडम, बुद्धू आदि ... पात्र बनाते। कभी कभी उनकी हँसी उडाते थे। इतनी सज्जनता अवश्य थी कि वे अपने विचारहीन ... निरादरसे बचाते थे। यथार्थमें बाबूलालकी

दीं। इस आत्म-विजयपर एक जातीय ड्रामा खेला गया, जिसके नायक हमारे शर्माजी ही थे। समाजकी उच्च श्रेणियोंमें इस आत्म त्यागकी चर्चा हुई और शर्माजीको अच्छी-खासी ख्याति प्राप्त हो गयी। इसीसे वह कई वर्षों से जातीय सेवामे लीन रहते थे। इस सेवाका अधिक भाग समाचार पत्रोंके अवलोकनमें बीतता था, जो जातीय सेवाका ही एक विशेष अङ्ग समझा जाता है। इसके अतिरिक्त वह पत्रोंके लिये लेख लिखते, सभाए करते और उनमें फडकते हुए व्याख्यान देते थे। शर्माजी "फ्री लाइ-ब्रेरी" के सेक्रेटरी, "स्टुडेण्ट्स एसोसियेशन" के सभापति, "सोसल सर्विस लीग" के सहायक मन्त्री और प्राइमरी एजूकेशन कमिटीके संस्थापक थे। कृषि-सम्बन्धी विषयोंसे उन्हें विशेष प्रेम था। पत्रोंमे जहा कहीं किसी नई खाद या किसी नवीन आवि-ष्कारका वर्णन देखते, तत्काल उसपर लाल पेन्सिलसे निशान कर देते और अपने लेखोंमें उसकी चर्चा करते थे। किन्तु शहरसे थोडी दूरपर उनका एक बडा ग्राम होनेपर भी, वह अपने किसी असामीसे परिचित न थे। यहातक कि कभी प्रयागके सरकारी कृषिक्षेत्रकी भी सैर करने न गये थे।

२

उसी मुहल्लेमें एक लाला बाबूलाल रहते थे। वह एक वकीलके मुहर्रिर थे। थोडी-सी उर्दू-हिन्दी जानते थे और उसीसे अपना काम भली-भांति चला लेते थे। सूरत शक्लके कुछ सुन्दर न थे। उस शक्लपर मकके चारखानेकी लम्बी अचकन और भी शोभा देती थी। जूता भी देशी ही पहनते थे। यद्यपि कभी-कभी

वे कडवे तेलसे उसकी सेवा किया करते, पर वह नीच स्वभावके अनुसार उन्हें काटनेसे न चूकता था। वेचारेको सालके ६ महीने पैरोंमें मरहम लगानी पडती। बहुधा नगे पांव कचहरी जाते, पर कजूस कहलानेके भय से जूतोंको हाथमें ले जाते। जिस ग्राममें शर्माजीकी जमीदारी थी, उसमें कुछ थोडासा हिस्सा उनका भी था। इस नातेसे कभी-कभी उनके पास आया करते थे। हां, तातीलके दिनोंमें गांव चले जाते। शर्माजीको उनका आकर बैठना नागवार मालूम होता, विशेषकर जब वह फैशनेबुल मनुष्योंकी उपस्थितिमें आ जाते। मुन्शीजी भी कुछ ऐसी स्थूल दृष्टिके पुरुष थे कि उन्हें अपना अनमिलापन बिलकुल दिखाई न देता। सबसे बडी आपत्ति यह थी कि वे बराबर कुर्सीपर डट जाते। मानो हसोंमें कौवा। उस समय मित्रगण अङ्गरेजीमें बातें करने लगते और बाबूलालको क्षुद्रबुद्धि, झक्की, बौडम, बुद्धू आदि उपाधियोंका पात्र बनाते। कभी कभी उनकी हँसी उडाते थे। शर्माजीमें इतनी सज्जनता अवश्य थी कि वे अपने विचारहीन मित्रको यथाशक्ति निरादरसे बचाते थे। यथार्थमें बाबूलालकी शर्माजीपर सच्ची भक्ति थी। एक तो वह बी० ए० पास थे, जिसका अर्थ यह होता है कि वह सरस्वती देवीके वरपुत्र थे। दूसरे वह देशभक्त थे। बाबूलाल जैसे विद्याविहीन मनुष्यका ऐसे रत्नको आदरणीय समझना कुछ अस्वाभाविक न था।

३

एक बार प्रयागमें प्लेगका प्रकोप हुआ। शहरके रईस लोग निकल भागे। वेचारे गरीब चूहोंकी भांति पटापट मरने लगे।

शर्माजीने भी चलनेकी ठानी। लेकिन "सोसल सर्विस लीग" के वे मन्त्री ठहरे। ऐसे अवसरपर निकल भागनेमें बदनामीका भय था। बहाना ढूढा। "लीग" में प्राय सभी लोग कालेजमे पढते थे। उन्हें बुलाकर इन शब्दोंमें अपना अभिप्राय प्रकट किया। मित्रवृन्द! आप अपनी जातिके दीपक हैं। आप ही इन मरणोन्मुख जातिके आशास्थल हैं। आज हमपर विपत्तिकी घटाए छाई हुई हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी आखें आपकी ओर न उठे तो किसकी ओर उठेगी। मित्रो, इस जीवनमें देश-सेवाके अवसर बडे सौभाग्य से मिला करते हैं। कौन जानता है कि परमात्माने तुम्हारी परीक्षाके लिये ही यह वज्र प्रहार किया हो। जनताको दिखा दो कि तुम वीरोंका हृदय रखते हो, जो कितने ही सकट पडनेपर भी विचलित नहीं होता। हा, दिखा दो कि वह वीर प्रसविनि पवित्र भूमि, जिसने हरिश्चन्द्र और भरतको उत्पन्न किया, आज भी शून्यगर्भा नहीं है। जिस जातिके युवकोंमे अपने पीडित भाइयोंके प्रति ऐसी करुणा और यह अटल प्रेम है वह ससारमें सदैव यश-कीर्त्तिकी भागी रहेगी। आइये, हम कमर बांधकर कर्मक्षेत्रमें उतर पडें। इसमें सन्देह नहीं कि काम कठिन है, राह बीहड़ है, आपको अपने आमोद-प्रमोद, अपने हाकी, टेनिस, अपने मिल और मिल्टनको छोडना पडेगा। तुम जरा हिचकोगे, हटोगे और मुँह फेर लोगे, परन्तु भाइयो! जातीय सेवाका स्वर्गीय आनन्द सहजमें ही नहीं मिल सकता! हमारा पुरुषत्व, हमारा मनोबल, हमारा शरीर, यदि जातिके काम न आवे तो वह व्यर्थ है। मेरी प्रबल आकांक्षा थी कि

इस शुभ कार्यमें मैं तुम्हारा हाथ बटा सकता, पर आज ही देहातोंमें भी बीमारी फैलनेका समाचार मिला है। अतएव मैं यहांका काम आपके सुयोग्य, सुदृढ हाथोंमें सौंपकर देहातमें जाता हूँ कि यथासाध्य देहाती भाइयोंकी सेवा करूँ। मुझे विश्वास है कि आप सहर्ष मातृभूमिके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे।

इस तरह गला छुड़ाकर शर्माजी सन्ध्या समय स्टेशन पहुचे। पर मन कुछ मलिन था। अपनी इस कायरता और निर्बलतापर मन ही मन लज्जित थे।

संयोगवश स्टेशनपर उनके एक वकील मित्र मिल गये। यह वही वकील थे जिनके आश्रयमें बाबूलालका निर्वाह होता था। यह भी भागे जा रहे थे। बोले, कहिये शर्माजी किधर चले? क्या भाग खड़े हुए?

शर्माजीपर घड़ों पानी पड गया, पर सँभलकर बोले, भागू क्यों?

वकील—सारा शहर क्यों भागा जा रहा है?

शर्माजी—मैं ऐसा कायर नहीं हूँ।

वकील—यार, क्यों बातें बनाते हो, अच्छा बताओ, कहां जाते हो?

शर्माजी—देहातोंमें बीमारी फैल रही है, वहां कुछ "रिलीफ" का काम करूँगा।

वकील—यह बिल्कुल झूठ है। अभी मैं डिस्ट्रिक्ट गजट देखके चला आता हूं। शहरके बाहर कहीं बीमारीका नाम नहीं है।

शर्माजी निरुत्तर होकर भी विवाद कर सकते थे। बोले-गजटको आप देववाणी समझते होंगे, मैं नहीं समझता।

वकील--आपके कानमें तो आकाशके दूत कह गये होंगे? साफ साफ क्यों नहीं कहते कि जानके डरसे भागा जा रहा हूँ।

शर्माजी—अच्छा, मान लीजिये यही सही। तो क्या पाप कर रहा हूँ? सबको अपनी जान प्यारी होती है।

वकील—हां, अब आये राहपर। यह मरदोंकी-सी बात है। अपने जीवनकी रक्षा करना शास्त्रका पहला नियम है। लेकिन अब भूलकर भी देशभक्तिकी डींग न मारियेगा। इस कामके लिये बडी दृढ़ता और आत्मिक बलकी आवश्यकता है। स्वार्थ और देशभक्तिमें विरोधात्मक अन्तर है। देशपर मिट जानेवालेको देश-सेवकका सर्वोच्च पद प्राप्त होता है, वाचालता और कोरी कलम घिसनेसे देशसेवा नहीं होती। कम से-कम मैं तो अखबार पढ़नेको यह गौरव नहीं दे सकता। अब कभी बढ़-बढ़कर बातें न कीजियेगा। आप लोग अपने सिवा सारे ससारको स्वार्थान्ध समझते हैं इसीसे कहता हू।

शर्माजीने उस उद्दण्डताका कुछ उत्तर न दिया। घृणासे मुह फेरकर गाड़ीमें बैठ गये।

४

तीसरे ही स्टेशनपर शर्माजी उतर पडे। वकीलकी कठोर बातोंसे खिन्न हो रहे थे। चाहते थे कि उसकी आंख बचाकर निकल जाय। पर उसने देख ही लिया और हँसकर बोला, क्या आपके ही गांवमें प्लेगका दौरा हुआ है?

शर्माजीने कुछ उत्तर न दिया। बहलीपर जा बैठे। कई बेगार हाजिर थे। उन्होंने असबाब उठाया। फागुनका महीना था। आमोंके बौरसे महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयलकी सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहानोंमें किसान आनन्दसे उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे। लेकिन शर्माजीको अपनी फटकारपर ऐसी ग्लानि थी कि इन चित्ताकर्षक वस्तुओंका उन्हें कुछ ध्यान ही न हुआ।

थोडी देर बाद वे ग्राममें आ पहुचे। शर्माजीके स्वर्गवासी पिता एक रसिक पुरुष थे। एक छोटा सा बाग, छोटा-सा पक्का कुवां, बगला, शिवजीका मन्दिर यह सब उन्हींके कीर्ति चिह्न थे। वह गर्मीके दिनोंमें यहीं रहा करते थे। पर शर्माजीके यहां आनेका यह पहला ही अवसर था। बेगारियोंने चारों तरफ सफाई कर रखी थी। शर्माजी बहलीसे उतरकर सीधे बगलेमें चले गये, सैकडों असामी दर्शन करने आये थे, पर वह उनसे कुछ न बोले।

घडी रात जाते-जाते शर्माजीके नौकर टमटम लिये आ पहुँचे। कहार, साईस और रसोइया महाराज तीनोंने असामियोंको इस दृष्टिसे देखा मानो वह उनके नौकर हैं। साईसने एक मोटे-ताजे किसानसे कहा, घोडेको खोल दो।

किसान बेचारा डरता डरता घोडेके निकट गया। घोड़ेने अनजान आदमीको देखते ही तेवर बदलकर कनौतियां खडी कीं। किसान डरकर लौट आया। तब साईसने उसे ढकेलकर कहा, बस,—निरे बछियाके ताऊ ही हो। हल जोतनेसे क्या

अक्ल भी चली जाती है। यह लो घोडेको टहलाओ। मुँह क्या बनाते हो, कोई सिंह है कि खा जायगा ?

किसानने भयसे कापते हुए राम पकडी, उसका घबराया हुआ मुख देखकर हँसी आती थी। पग पगपर घोडेको चौकन्नी दृष्टिसे देखता, मानों वह कोई पुलिसका सिपाही है।

रसोई बनानेवाले महाराज एक चारपाईपर लेटे हुए थे। कडककर बोले, अरे नउआ कहां है? चल पानी-वानी ला, हाथ-पैर धो दे।

कहारने कहा, अरे किसीके पास जरा सुरती-चूना हो तो देना। बहुत देरसे तमाखू नहीं खाई।

मुख्तार (कारिन्दा) साहबने इन मेहमानोंकी दावतका प्रबन्ध किया। साईस और कहारके लिये पूरियां बनने लगीं, महाराजको सामान दिया गया। मुख्तार साहब इशारेपर दौडते थे और दीन किसानोंका तो पूछना ही क्या, वे तो बिना दामोंके गुलाम थे। सच्चे स्वतन्त्र लोग इस समय सेवकोंके सेवक बने हुए थे।

५

कई दिन बीत गये। शर्माजी अपने बगलेमे बैठे हुए पत्र और पुस्तके पढा करते थे। रस्किनके कथनानुसार राजाओं और महात्माओंके सत्सङ्गका सुख लूटते थे। हालैंडके कृषिविधान, अमेरिकाके शिल्प-वाणिज्य और जर्मनीकी शिक्षा-प्रणाली आदि गूढ विषयोंपर विचार किया करते थे। गांवमे ऐसा कौन था जिसके साथ बैठते? किसानोंसे बातचीत करनेको उनका जी चाहता, पर न जाने क्यों वे उजड्ड, अक्खड लोग उनसे दूर रहते।

शर्माजीका मस्तिष्क कृषि सम्बन्धी ज्ञानका भाण्डार था। हालैंड और डेनमार्ककी वैज्ञानिक खेती, उसकी उपजका परिमाण और वहाँके को-आपरेटिव बैंक आदि गहन विषय उनकी जिह्वापर थे। पर इन गवारोंको क्या खबर? यह सब उन्हें झुककर पालागन अवश्य करते और कतराकर निकल जाते, जैसे कोई मरकहे बैलसे बचे। यह निश्चय करना कठिन है कि शर्माजीकी उनसे वार्तालाप करनेकी इच्छामें क्या रहस्य था, सच्ची सहानुभूति या अपनी सर्वज्ञताका प्रदर्शन।

शर्माजीकी डाक शहरसे लाने और ले जानेके लिये दो आदमी प्रतिदिन भेजे जाते। वह लूईकूनेकी जल चिकित्साके भक्त थे। मेवोंका अधिक सेवन करते थे। एक आदमी इस कामके लिये भी दौड़ाया जाता था। शर्माजीने अपने मुख्तारसे सख्त ताकीद कर दी थी कि किसीसे मुफ्त काम न लिया जाय, तथापि शर्माजीको यह देखकर आश्चर्य होता था कि कोई इन कामोंके लिये प्रसन्नतासे नहीं जाता। प्रतिदिन बारी-बारीसे आदमी भेजे जाते थे। वह इसे भी बेगार समझते थे। मुख्तार साहबको प्रायः कठोरतासे काम लेना पड़ता था। शर्माजी किसानोंकी इस शिथिलताको मुटमरदीके सिवा और क्या समझते। कभी-कभी वह स्वयं क्रोधसे भरे हुए अपने शान्ति कुटीरसे निकल आते और अपनी तीव्र वाक्य शक्तिका चमत्कार दिखाने लगते थे। शर्माजी के घोड़ेके लिये घास-चारेका प्रबन्ध भी कुछ कम कष्टदायक न था। रोज सन्ध्या समय डाँट डपट और रोने चिल्लानेकी आवाज उन्हें सुनाई देती थी। एक कोलाहल-सा मच जाता था। पर वह

इस सम्बन्धमें अपने मनको इस प्रकार समझा लेते थे कि घोडा भूखों नहीं मर सकता, घासका दाम दे दिया जाता है, यदि इसपर भी यह हाय हाय होती है तो हुआ करे। शर्माजीको यह कभी नहीं सूझी कि जरा चमारोंसे पूछ लें कि घासका दाम मिलता है या नहीं। यह सब व्यवहार देख देखकर उन्हे अनुभव होता जाता था कि देहाती बडे मुटमरद, बदमाश हैं, इनके विषयमें मुख्तार साहब जो कुछ कहते हैं वह यथार्थ है। पत्रों और व्याख्यानोंमे उनकी अवस्थापर व्यर्थ गुलगपाडा मचाया जाता है, यह लोग इसी वर्तावके योग्य हैं। जो इनकी दीनता और दरिद्रताका राग अलापते हैं वह सच्ची अवस्थासे परिचित नहीं हैं। एक दिन शर्माजी महात्माओंकी सङ्गतिसे उकता कर सैरको निकले। घूमते-फिरते खलिहानोंकी तरफ निकल गये। वहा आमके वृक्षोंके नीचे किसानोंकी गाढ़ी कमाईके सुनहरे ढेर लगे हुए थे। चारो ओर भूसेकी आधी-सी उड रही थी। बैल अनाजका एक गाल खा लेते थे। यह सब उन्हीकी कमाई है, उनके मुँहमें आज जाबी देना बडी कृतघ्नता है। गांवके बढ़ई, चमार, धोबी और कुम्हार अपना वार्षिक कर उगाहनेके लिये जमा थे। एक ओर नट ढोल बजा बजाकर अपने करतब दिखा रहा था। कवीश्वर महाराजकी अतुल काव्य शक्ति आज उमगपर थी।

शर्माजी इस दृश्यसे बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु इस उल्लासमें उन्हें अपने कई सिपाही दिखाई दिये, जो लट्ठ लिये अनाजके ढेरोंके पास जमा थे। पुष्प-वाटिकामें ठूठ जैसा भद्दा दिखाई देता

अथवा ललित सङ्गीतमें जैसे कोई बेसुरी तान कानोंको अप्रिय लगती है, उसी तरह शर्माजीकी सहृदयतापूर्ण दृष्टि में ये मँडराते सिपाही दिखाई दिये। उन्होंने निकट जाकर एक सिपाहीको बुलाया। उन्हें देखतेही सब के सब पगडिया सम्भालते दौडे।

शर्माजीने पूछा, तुम लोग यहा इस तरह क्यों बैठे हो?

एक सिपाहीने उत्तर दिया, सरकार, हम लोग असामियोंके सरपर सवार न रहें तो एक कौडी वसूल न हो। अनाज घरमें जानेकी देर है, फिर तो वह सीधे बात भी न करेंगे—बडे सरकश लोग हैं। हम लोग रातकी रात बैठे रहते हैं। इतनेपर भी जहा आंख झपकी, ढेर गायब हुआ।

शर्माजीने पूछा, तुम लोग यहा कब तक रहोगे? एक सिपाहीने उत्तर दिया, हुजूर! बनियोंको बुलाकर अपने सामने अनाज तौलाते हैं। जो कुछ मिलता है उसमेंसे लगान काटकर बाकी असामीको दे देते हैं।

शर्माजी सोचने लगे, जब यह हाल है तो इन किसानोंकी अवस्था क्यों न खराब हो? यह बेचारे अपने धनके मालिक नहीं हैं। उसे अपने पास रखकर अच्छे अवसरपर नहीं बेच सकते। इस कष्टका निवारण कैसे किया जाय? यदि मैं इस समय इनके साथ रिआयत कर दू तो लगान कैसे वसूल होगा।

इस विषयपर विचार करते हुए वह वहासे चल दिये। सिपाहियोंने साथ चलना चाहा, पर उन्होंने मना कर दिया। भीड भाड़से उन्हें उलझन होती थी। अकेले ही गांवमें घूमने लगे। छोटा-सा गांव था। पर सफाईका कहीं नाम न था।

चारों ओरसे दुर्गन्ध उठ रही थी। किसीके दरवाजेपर गोवर सड़ रहा था, तो कहीं कीचड़ और कूड़ेका ही ढेर वायुको विषैली बना रहा था। घरोंके पास ही घूरपर खादके लिये गोवर फेंका हुआ था जिससे गांवमें गन्दगी फैलनेके साथ-साथ खादका सार अंश धूप और हवाके साथ गायब होता था। गांवके मकान तथा रास्ते बेसिलसिले, बेढंगे तथा टूटे फूटे थे। मोरियों के गन्दे पानीके निकासका कोई प्रबन्ध न होनेकी वजहसे दुर्गन्धसे दम घुटता था। शर्माजीने नाकपर रूमाल लगा ली। सांस रोककर तेजीसे चलने लगे। बहुत जी घबराया तो दौड़े और हांफते हुए एक सघन नीमके वृक्षकी छायामें आकर खड़े हो गए। अभी अच्छी तरह सांस भी न लेने पाये थे कि बाबूलाल ने आकर पालागन किया और पूछा, क्या कोई सांड़ था?

शर्माजी सांस खींचकर बोले, सांड़से अधिक भयङ्कर विषैली हवा थी। ओह! यह लोग ऐसी गन्दगीमें कैसे रहते हैं?

बाबूलाल—रहते क्या हैं किसी तरह जीवनके दिन पूरे करते हैं।

शर्माजी—पर यह स्थान तो साफ है?

बाबूलाल—जी हां, इस तरफ गांवके किनारेतक साफ जगह मिलेगी।

शर्माजी—तो उधर इतना मैला क्यों है?

बाबूलाल—गुस्ताखी माफ हो तो कहूँ।

शर्माजी हँसकर बोले,प्राणदान मांगा होता। सच बताओ,क्या बात है? एक तरफ ऐसी स्वच्छता और दूसरी तरफ वह गन्दगी!

बाबूलाल—यह मेरा हिस्सा है और वह आपका हिस्सा है। मैं अपने हिस्सेकी देख रेख स्वय करता हू पर आपका हिस्सा नौकरोंकी कृपाके अधीन है।

शर्माजी—अच्छा, यह बात है! आखिर आप क्या करते हैं?

बाबूलाल—और कुछ नहीं, केवल ताकीद करता रहता हू। जहा अधिक मैलापन देखता हूँ स्वय साफ करता हूँ। मैंने सफाई का एक इनाम नियत कर दिया है, जो प्रति मास सबसे साफ घरके मालिकको मिलता है। आइये बैठिये।

शर्माजीके लिये एक कुर्सी रख दी गई। वे उसपर बैठ गये और बोले—क्या आप आजही आये हैं?

बाबूलाल—जी हां, कल तातील है। आप जानते हैं कि तातीलके दिनोंमें मैं यहीं रहता हूँ।

शर्माजी—शहरका क्या रङ्ग-ढङ्ग है?

बाबूलाल—वही हाल, बल्कि और भी खराब। 'सोमल सर्विस लीग' वाले भी गायब हो गये। गरीबोंके घरोंमें मुर्दे पड़े हुए हैं। बाजार बन्द हो गये। खानेको अनाज नहीं मिलता।

शर्माजी—भला बताओ तो ऐसी आगमें मैं यहां कैसे रहता? बस, लोगोंने मेरी ही जान सस्ती समझ रखी है। जिस दिन मैं यहां आ रहा था आपके वकील साहब मिल गये बेतरह गरम हो पड़े। मुझे देश भक्तिके उपदेश देने लगे। जिन्हें कभी भूलकर भी देशका ध्यान नहीं आता वे भी मुझे उपदेश देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कुछ मुझे ही देश भक्तिका दावा है? जिसे देखो, वही तो देशसेवक बना फिरता है।

जो लोग सहस्रों रुपये अपने भोग-विलासमें फूंकते हैं उनकी गणना भी जाति-सेवकोंमें है। मैं तो फिर भी कुछ-न-कुछ करता ही हूँ। मै भी मनुष्य हू, कोई देवता नहीं, धनकी अभिलाषा अवश्य है। मैं जो अपना जीवन पत्रोंके लिये लेख लिखनेमें काटता हूँ, देश हितकी चिन्तामें मग्न रहता हू, उसके लिये मेरा इतना सम्मान बहुत समझा जाता है। जब किसी सेठजी या किसी वकील साहबके दरेदौलतपर हाजिर हो जाऊ तो वह कृपा करके मेरा कुशल-समाचार पूछ ले। उसपर भी यदि दुर्भाग्यवश किसी चन्देके सम्बन्धमें जाता हूँ तो लोग मुझे यमका दूत समझते हैं। ऐसी रुखाईका व्यवहार करते हैं जिससे सारा उत्साह भग हो जाता है। यह सब आपत्तियां तो मैं झेलू, पर जब किसी सभाके सभापति चुननेका समय आता है तो कोई वकील साहब इसके पात्र समझे जाते हैं, जिन्हें अपने धनके सिवा उक्त पदका कोई अधिकार नहीं। तो भाई, जो गुड खाय वह कान छिदावे। देश हितैषिताका पुरस्कार यही जातीय सम्मान है, जब वहांतक मेरी पहुँचही नहीं तो व्यर्थ जान क्यों दू? यदि यह आठ वर्ष मैंने लक्ष्मीकी आराधनामें व्यतीत किये होते तो अबतक मेरी गिनती बड़े आदमियोंमें होती। अभी मैंने कितने परिश्रमसे देहाती बैंकोंपर लेख लिखा, महीनों उसकी तैयारीमें लगे, सैकडों पत्र-पत्रिकाओंके पन्ने उलटने पडे, पर किसीने उसके पढनेका कष्ट भी न उठाया। यदि इतना परिश्रम किसी और काममें किया होता तो कम-से-कम स्वार्थ सिद्ध होता। मुझे ज्ञात हो गया कि इन बातोंको कोई नहीं पूछता। सम्मान और कीर्ति यह सब धनके नौकर हैं।

बाबूलाल—आपका कहना यथार्थ ही है। पर आप जै महानुभाव इन बातोंको मनमें लावेंगे तो यह काम कौन करेगा

शर्मांजी—वही करेंगे जो 'आनरेबल' बने फिरते हैं या अ नगरके पिता कहलाते हैं। मैं तो अब देशाटन करूँगा, संसारक हवा खाऊँगा।

बाबूलाल—समझ गये कि यह महाशय इस समय आपेमें नहीं हैं। विषय बदलकर पूछा, यह तो बताइये, आपने देहातको कैसा पसन्द किया? आप तो पहले ही पहल यहा आये हैं।

शर्मांजी—बस, यही कि बैठे बैठे जी घबराता है। हां, कुछ नये अनुभव अवश्य प्राप्त हुए हैं। कुछ भ्रम दूर हो गये। पहले समझता था कि किसान बड़े दीन-दुःखी होते हैं। अब मालूम हुआ कि यह लोग बड़े मुटमरद, अनुदार और दुष्ट हैं। सीधे बात न सुनेंगे, पर कड़ाईसे जो काम चाहे करा लो। बस निरे पशु हैं, और तो और, लगानके लिये भी उनके सिरपर सवार रहनेकी जरूरत है। टल जाओ तो कौड़ी वसूल न हो। नालिश कीजिये, बेदखली जारी कीजिये, कुर्की कराइये, यह सब आपत्तियां सहेंगे पर समयपर रुपया देना नहीं जानते। यह सब मेरे लिये नई बातें हैं। मुझे अबतक इनसे जो सहानुभूति थी वह अब नहीं है। पत्रोंमें उनकी हीनावस्थाके जो मरसिये गाये जाते हैं वह सर्वथा कल्पित हैं। क्यों, आपका क्या विचार है?

बाबूलालने सोचकर जवाब दिया। मुझे तो अबतक कोई शिकायत नहीं हुई। मेरा अनुभव यह है कि यह लोग बड़े शील-वान्, नम्र और कृतज्ञ होते हैं। परन्तु इनके ये गुण प्रकट में

नहीं दिखाई देते। उनसे मिलिये और उन्हे मिलाइये तब उनके जौहर खुलते हैं। उनपर विश्वास कीजिये तब वह आपपर विश्वास करेंगे। आप कहेंगे इस विषयमे अग्रसर होना उनका काम है और आपका यह कहना उचित भी है, लेकिन शताब्दियोंसे वह इतने पीसे गये हैं इतनी ठोकरे खाई हैं कि उनमे स्वाधीन गुणोंका लोप-सा हो गया है। जमींदारको वह एक हौआ समझते हैं जिसका काम उन्हें निगल जाना है, वह उसका मुकाबिला नहीं कर सकते, इसलिये छल और कपटसे काम लेते हैं, जो निर्बलोंका एकमात्र आधार है। पर आप एकबार उनके विश्वास-पात्र बन जाइये, फिर आप कभी उनकी शिकायत न करेंगे।

बाबूलाल यह बाते कर ही रहे थे कि कई चमारोंने घासके बडे बडे गट्ठे लाकर डाल दिये और चुपचाप चले गये। शर्मांजी को आश्चर्य हुआ। इसी घासके लिये इनके बगलेपर रोज हाय हाय होती है और यहा किसीको खबर भी नहीं हुई। बोले, आखिर अपना विश्वास जमानेका कोई उपाय भी है?

बाबूलालने उत्तर दिया, आप स्वय बुद्धिमान हैं। आपके सामने मेरा मुह खोलना धृष्टता है। मैं इसका एक ही उपाय हूँ। उन्हे किसी कष्टमे देखकर उनकी मदद कीजिये।' मैंने उन्हींके लिये वैद्यक सीखा और एक छोटा मोटा औषधालय अपने साथ रखता हूँ। रुपया मांगते हैं तो रुपया, अनाज मांगते हैं तो अनाज देता हूँ, पर सूद नहीं लेता। इससे मुझे कोई हानि नहीं होती, दूसरे रूपमें सूद अधिक मिल जाता है। गांवमें दो कन्धी स्त्रियां और दो अनाथ लडकियां हैं, उनके निर्वाहका प्रब-

कर दिया है, होता सब उन्हींकी कमाईसे है, पर नेकनामी मेरी होती है।

इतनेमें कई असामी आये और बोले, भैया, पोत ले लो।

शर्माजीने सोचा, इसी लगानके लिये मेरे चपरासी खलिहानमें चारपाई डालकर सोते हैं और किसानोंको अनाजके ढेरके पास फटकने नहीं देते और वही लगान यहां इस तरह आपसे आप चला आता है। बोले, यह सब तो तब ही हो सकता है जब जमींदार आप गावमे रहे।

बाबूलालने उत्तर दिया, जी हा और क्या? जमींदारके गांवमें न रहनेसे इन किसानोको बड़ी हानि होती है। कारिन्दो और नौकरोंसे यह आशा करनी भूल है कि वह इनके साथ अच्छा बर्ताव करेंगे क्योंकि उनको तो अपना उल्लू सीधा करनेसे काम रहता है। जो किसान उनकी मुट्ठी गरम करते हैं उन्हें मालिकके सामने सीधा और जो कुछ नहीं देते उन्हें बदमाश और सरकश बतलाते हैं। किसानोंको बात-बातके लिये चूसते हैं, किसान छान छवाना चाहे तो उन्हें दे, दरवाजेपर एक खूटातक गाड़ना चाहे तो उन्हें पूजे, एक छप्पर उठानेके लिये दस रुपये जमींदारको नजराना दे तो दो रुपये मुशीजीको जरूर ही देने होगे। कारिंदे को घी दूध मुफ्त खिलावे, कहीं-कहीं तो गेहूँ चावल तक मुफ्तमें हजम कर जाते हैं। जमींदार तो किसानोंको चूसते हैं, कारिंदे भी कम नहीं चूसते। जमींदार तीन पावके भावमें रुपयेका सेरभर घी ले तो मुशीजीको अपने घर अपने साले बहनोइयोंके लिये अठारह छटांक चाहिये। तनिक तनिक सी बातके लिये डांड़

और जुर्माना देते-देते किसानोंके नाकमें दम हो जाता है। आप जानते हैं इसीसे और कहीं ३०) की नौकरी छोड़कर भी जमींदारोंकी कारिन्दगिरी लोग ८), १०) में स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि ८), १०) का कारिन्दा सालमें ८००), १०००) ऊपरसे कमाता है। खेद तो यह है कि जमींदार लोगोंमें शिक्षाकी उन्नतिके साथ-साथ शहरमें रहनेकी प्रथा दिनोंदिन बढती जा रही है। मालूम नहीं आगे चलकर इन बेचारोंकी क्या गति होगी?

६

शर्माजीको बाबूलालकी बातें विचारपूर्ण मालूम हुई। पर यह सुशिक्षित मनुष्य थे। किसी बातको चाहे वह कितनी ही यथार्थ क्यों न हो, बिना तर्कके ग्रहण नहीं कर सकते थे। बाबूलालको वह सामान्य बुद्धिका आदमी समझते आये थे। इस भावमें एकाएक परिवर्त्तन हो जाना असम्भव था। इतना ही नहीं इन बातोंका उल्टा प्रभाव यह हुआ कि वह बाबूलालसे चिढ गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि बाबूलाल अपने सुप्रबन्धके अभिमानमें मुझे तुच्छ समझता है, मुझे ज्ञान सिखानेकी चेष्टा करता है। सदैव दूसरोंको सद्ज्ञान सिखाने और सम्मान दिखानेका प्रयत्न किया हो वह बाबूलाल जैसे आदमीके सामने कैसे सिर झुकाता? अतएव जब वहांसे चले तो शर्माजीकी तर्कशक्ति बाबूलालकी बातोंकी आलोचना कर रही थी। मैं गांवमें क्योंकर रहूं? क्या जीवनकी सारी अभिलाषाओंपर पानी फेर दूं? गंवारोंके साथ बैठे बैठे गप्पे लड़ाया करूं? घड़ी आध घड़ी मनोरञ्जनके लिये उनसे बातचीत करना

सम्भव है, पर यह मेरे लिये असह्य है कि वह आठों पहर मेरे सिरपर सवार रहे। मुझे तो उन्माद हो जाय। माना कि उनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, पर यह कदापि नहीं हो सकता कि उनके लिये मैं अपना जीवन नष्ट कर दूं। बाबूलाल बन जानेकी क्षमता मुझमें नहीं है कि जिससे विचारे इस गावकी सीमासे बाहर नहीं जा सकते। मुझे ससारमे बहुत काम करना है, बहुत नाम करना है। ग्राम्य जीवन मेरे लिये प्रतिकूल ही नहीं, बल्कि प्राणघातक भी है।

यही सोचते हुए वह बगलेपर पहुचे तो क्या देखते हैं कि कई कास्टेबल बंगलेके बरामदेमें लेटे हुए हैं। मुख्तार साहब शर्माजीको देखते ही आगे बढकर बोले, हुजूर! बड़े दारोगाजी छोटे दारोगाजीके साथ आये हैं। मैंने उनके लिये पलग कमरेमें ही बिछवा दिये हैं। ये लोग जब इधर आ जाते हैं तो यहीं ठहरा करते हैं। देहातमे इनके योग्य स्थान और कहा है? अब मैं इनसे कैसे कहता कि कमरा खाली नहीं है। हुजूरका पलग ऊपर बिछवा दिया है।

शर्माजी अपने अन्य देश हितचिन्तक भाइयोंकी भांति पुलिसके घोर विरोधी थे। पुलिसवालोंके अत्याचारोंके कारण उन्हे बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। उनका सिद्धान्त था कि यदि पुलिसका आदमी प्याससे मर भी जाय तो उसे पानी न देना चाहिये। अपने कारिन्देसे यह समाचार सुनते ही उनके शरीरमें आग सी लग गयी। कारिन्देकी ओर लाल आंखोंसे देखा और लपककर कमरेकी ओर चले, कि बेईमानोंका बोरिया

उठाके फेंक दें। वाह! मेरा घर न हुआ कोई होटल हुआ! आकर डट गये। तेवर बदले हुए बरामदेमें जा पहुँचे कि इतनेमें छोटे दारोगा बाबू कोकिला सिंहने कमरेसे निकलकर पालागन किया और हाथ बढाकर बोले—अच्छी साइतसे चला था कि आपके दर्शन हो गये। आप मुझे भूल तो न गये होंगे?

यह महाशय दो साल पहले "मोसल सर्विस लीग" के उत्साही सदस्य थे। इण्टरमिडियेट फेल हो जानेके बाद पुलिसमें दाखिल होगये थे। शर्माजी उन्हें देखते ही पहचान गये। क्रोध शान्त हो गया। मुस्कुरानेकी चेष्टा करके बोले, भूलना बड़े आदमियोंका काम है। मैं तो आपको दूर हीसे पहचान गया था। कहिये, इसी थानेमें हैं क्या? कोकिला सिंह बोले, जी हां, आजकल यहीं हूँ। आइये, आपको दारोगाजीसे इन्ट्रोड्यूस (परिचित) करा दूं।

भीतर आराम कुरसीपर लेटे दारोगा जुल्फिकार अलीखां हुक्का पी रहे थे। बडे डीलडौलके मनुष्य थे। चेहरेसे रोब टपकता था। शर्माजीको देखते ही उठकर हाथ मिलाया और बोले, जनाबसे नियाज हासिल करनेका शौक मुद्दतसे था। आज खुशनसीबीसे मौका भी मिल गया। इस मुदाखिलत बेजाको मुआफ फरमाइयेगा।

शर्माजीको आज मालूम हुआ कि पुलिसवालोंको अशिष्ट कहना अन्याय है। हाथ मिलाकर बोले, यह आप क्या फरमाते हैं, यह तो आपका घर है।

पर इसके साथ ही पुलिसपर आक्षेप करनेका ऐसा अच्छा अवसर हाथसे नहीं जाने देना चाहते थे। कोकिलासिंहसे बोले,

आपने तो पिछले साल कालेज छोड़ा है लेकिन आपने नौ
भी की तो पुलिसकी।

बड़े दारोगाजी यह ललकार सुनकर सभल बैठे और बो
क्यों जनाब। क्या पुलिस ही सारे मुहकमोंसे गया-गुजरा है
ऐसा कौन सा सीगा है जहां रिश्वतका बाजार गर्म नहीं। अग
आप ऐसे एक सीगेका नाम बता दीजिये तो मैं ता उम्र आपक
गुलामी करू। मुलाजमत करके रिश्वत न लेना मुहाल है
तालीमके सीगेको बेलौस कहा जाता है मगर मुझको इसका खूब
तजरबा हो चुका। अब मैं किसीके रास्तबाजीके दावेको तस्लीम
नहीं कर सकता और दूसरे सीगोंकी निस्बत तो मैं नहीं कह
सकता मगर पुलिसमें जो रिश्वत नहीं लेता उसे मैं अहमक
समझता हूँ। मैंने दो एक दयानतदार सब इन्सपेक्टर देखे हैं पर
उन्हें हमेशा तबाह देखा। कभी मातूब, कभी मुअत्तल। कभी
बर्खास्त। चौकीदार और कान्स्टेबल बेचारे थोड़ी औकातके
आदमी हैं, उनका गुजारा क्योंकर हो? वही हमारे हाथ-पाव
हैं, उन्हींपर हमारी नेकनामीका दारमदार है। जब वह खुद
भूखों मरेंगे, तब हमारी मदद क्या करेंगे? जो लोग हाथ बढ़ा-
कर लेते हैं, खुद खाते हैं, दूसरोंको खिलाते हैं, अफसरोंको
खुश रखते हैं, उनका शुमार कारगुजार नेकनाम आदमियोंमें
होता है। मैंने तो यही अपना वसूल बना रखा है और खुदाका
शुक्र है कि अफसर और मातहत सभी खुश हैं।

शर्माजीने कहा—इसी वजहसे तो मैंने ठाकुर साहबसे कहा
था क आप क्यों इस सीगेमें आये?

जुल्फिकार अलीखा गरम होकर बोले, आये तो मुहकमेपर कोई एहसान नहीं किया। किसी दूसरे सीगेमे होते तो अभीतक ठोकरें खाते होते, नहीं तो घोडेपर सवार नौशा बने घूमते हैं। मैं तो बात सच्ची कहता हूँ। चाहे किसीको अच्छी लगे या बुरी। इनसे पूछिये, हरामकी कमाई अकेले आजतक किसीको हजम हुई है? यह नये लोग जो आते हैं उनकी यह आदत होती है कि जो कुछ मिले अकेले ही हजम कर ले। चुपके-चुपके लेते हैं और थानेके अहलकार मुह ताकते रह जाते हैं। दुनियाकी निगाहमे ईमानदार बनना चाहते हैं पर खुदासे नहीं डरते। अरे, जब हम खुदा हीसे नहीं डरते तो आदमियोंका क्या खौफ? ईमानदार बनना हो दिलसे बनो। सचाईका स्वांग क्यों भरते हो? यह हजरत छोटी-छोटी रकमोंपर गिरते हैं। मारे गरूरके किसी आदमीसे राय तो लेते नहीं। जहा आसानीसे सौ रुपये मिल सकते हैं वहा पांच रुपयेमें बुलबुल हो जाते हैं। कहीं दूधवालेके दाम मार लिये, कहीं हज्जामके पैसे दबा लिये, कहीं बनियेसे निर्खके लिये झगड बैठे। यह अफसरी नहीं दुच्चापन है, गुनाह बेलज्जत, फायदा तो कुछ नहीं, बदनामी मुफ्त। मैं बडे-बडे शिकारोंपर निगाह रखता हू, यह पिद्दी और बटेर मातहतोंके लिये छोड देता हू। हलफसे कहता हू, गरज बुरी शै है। रिश्वत देनेवालोंसे ज्यादा अहमक अन्धे आदमी दुनियामें न होंगे। ऐसे कितने ही उल्लू आते हैं जो महज यह चाहते हैं कि मैं उनके किसी पट्टीदार या दुश्मनको दो-चार खोटी खरी सुना दू। कई ऐसे बेईमान जमींदार आते हैं जो यह चाहते हैं कि

वह असामियोंपर जुल्म करते रहें और पुलिस दखल न दे। इतने हीके लिये वह सैकडों रुपये मेरी नजर करते हैं और खुशामद घालूमें। ऐसे अक्लके दुश्मनोंपर रहम करना हिमाक़त है। जिलेमें मेरे इस इलाकेको सोनेकी खान कहते है। इसपर सबके दात रहते हैं। रोज एक-न-एक शिकार मिलता रहता है। जमींदार निरे जाहिल, लण्ठ, जरा-जरा सी बातपर फौजदारिया कर बैठते हैं। मैं तो खुदासे दुआ करता रहता हूँ कि यह हमेशा इसी जहालतके गढेमें पडे रहें। सुनता हूँ, कोई साहब आम-तालीमका सवाल पेश कर रहे हैं, उस भलेमानुसको न जाने यह क्या धुन है। शुक्र है कि हमारी आली फहम सरकारने उसे ना-मजूर कर दिया। बस,इन सारे इलाकेमें एक यही आपका पट्टीदार अलबत्ता समझदार आदमी है। उसके यहां मेरी या और किसी-की दाल नहीं गलती और लुत्फ यह कि कोई उससे नाखुश नहीं। बस मीठी-मीठी बातोंसे मन भर देता है। अपने असामियोंके लिये जान देनेको हाजिर और हलफसे कहता हूं कि अगर मैं जमींदार होता तो इसी शख्सका तरीका अख्तियार करता। जमीन्दारका फर्ज है कि अपने असामियोंको जुल्मसे बचाये। उनपर शिकारियोंका वार न होने दे। बेचारे गरीब किसानोंकी जानके तो सभी गाहक होते हैं और हलफसे कहता हूँ, उनकी कमाई उनके काम नहीं आती। उनकी मेहनतका मजा हम लूटते हैं। यों तो जरूरतसे मजबूर होकर इन्सान क्या नहीं कर सकता, पर एक यह है कि इन बेचारोंकी हालत वाकई रहमके क़ाबिल है और जो सख्स उनके लिये सीना-सिपर हो सके उसके कदम

चूमने चाहिये। मगर मेरे लिये तो वही आदमी सबसे अच्छा है जो शिकारमें मेरी मदद करे।

शर्माजीने इस बकवादको बड़े ध्यानसे सुना। वह रसिक मनुष्य थे। इसकी मार्मिकतापर मुग्ध हो गये। सहृदयता और कठोरताके ऐसे विचित्र मिश्रणसे उन्हें मनुष्योंके मनोभावोंका एक कौतूहल जनक परिचय प्राप्त हुआ। ऐसी वक्तृताका उत्तर देनेकी कोशिश करना व्यर्थ था। बोले—क्या कोई तहकीकात है या महज गश्त ?

दारोगाजी बोले, जी नहीं, महज गश्त। आजकल किसानोंके फसलके दिन हैं। यही जमाना हमारी फसलका भी है। शेरको भी तो मांदमें बैठे-बैठे शिकार नहीं मिलता। जगलमें घूमता है। हम भी शिकारकी तलाशमें हैं। किसीपर खुफिया फरोसीका इल-जाम लगाया, किसीको चोरीका माल खरीदनेके लिये पकड़ा, किसीको हमलहरामका झगड़ा उठाकर फांसा। अगर हमारे नसीबसे डाका पड गया तो हमारी पांचों अगुली घी में समझिये। डाकू तो नोच-खसोटकर भागते हैं। असली डाका हमारा पड़ता है। आस-पासके गांवोंमें झाड़ू फेर देते हैं। खुदासे शबोरोज दुआ किया करते है कि या परवरदिगार! कहींसे रिजक भेज। झूठे सच्चे डाकेकी खबर आवे। अगर देखा कि तकदीरपर शाकिर रहनेसे काम नहीं चलता तो तदबीरसे काम लेते हैं। जरासे इशारेकी जरूरत है, डाका पडते क्या देर लगती है! आप मेरी साफगोईपर हैरान होते होंगे। अगर मैं अपने सारे हथकंडे बयान करू तो आप यकीन न करेंगे और लुत्फ यह कि मेरा

शुमार जिलेके निहायत होशियार, कारगुजार, दयानतदार सब इन्सपेक्टरोंमें है। फर्जी डाके डलवाता हूँ। फर्जी मुल्जिम पकडता हूं। मगर सजाएं असली दिलवाता हूँ। शहादतें ऐसी गढाता हूँ कि कैसा ही वैरिस्टरका चचा क्यों न हो, उनमें गिरफ्तार नहीं कर सकता।

इतनेमें शहरसे शर्माजीकी डाक आ गयी। उठ खडे हुए और बोले, दारोगाजी, आपकी बाते बडी मजेदार होती हैं। अब इजाजत दीजिये। डाक आ गई है। जरा उसे देखना है।

७

चांदनी रात थी। 'शर्माजी खुली छतपर लेटे हुए एक समाचार पत्र पढ़नेमें मग्न थे। अकस्मात कुछ शोर-गुल सुनकर नीचेकी तरफ झांका तो क्या देखते हैं कि गांवके चारों तरफसे कान्सटेबलोंके साथ किसान चले आ रहे हैं? बहुतसे आदमी खलिहानकी तरफसे बड़बड़ाते आते थे। बीच बीचमें सिपाहियोंकी डांट-फटकारकी आवाजें भी कानोंमें आती थीं। यह सब आदमी बगलेके सामने सहनमें बैठते जाते थे। कहीं-कहीं स्त्रियोंका आर्त्तनाद भी सुनाई देता था। शर्माजी हैरान थे कि मामला क्या है। इतनेमें दारोगाजीकी भयकर गरज सुनाई पड़ी—हम एक न मानेंगे, सब लोगोंको थाने चलना होगा।

फिर सन्नाटा हो गया। मालूम होता था कि आदमियोंमें काना फूसी हो रही है। बीच बीचमें कुल्तार साहब और सिपाहियोंके हृदय विदारक शब्द आकाशमें गूंज उठते। फिर ऐसा जान पड़ा कि किसीपर मार पड़ रही है। शर्माजीसे अब न रहा

गया। वह सीढ़ियोंके द्वारपर आये। कमरेमें झांककर देखा। मेजपर रुपये गिने जा रहे थे। दारोगाजीने फर्माया, इतने बड़े गांवमें सिर्फ यही ?

मुख्तार साहबने उत्तर दिया, अभी घबराइये नहीं। अबकी मुखियोंकी खबर ली जाय। रुपयोंका ढेर लग जाता है।

यह कहकर मुख्तारने कई किसानोंको पुकारा, पर कोई न बोला, तब दारोगाजीका गगन-भेदी नाद सुनाई दिया, यह लोग सीधेसे न मानेंगे। मुखियोंको पकड़ लो। हथकड़िया भर दो। एक एकको डामल भिजवाऊंगा।

यह नादिरशाही हुक्म पाते ही कान्सटेबलोंका दल उन आदमियोंपर टूट पड़ा। ढोल-सी पिटने लगी। क्रन्दनध्वनिसे आकाश गूंज उठा। शर्माजीका रक्त खौल रहा था। उन्होंने सदैव न्याय और सत्यकी सेवा की थी। अन्याय और निर्दयताका यह करुणात्मक अभिमान उनके लिये असह्य था।

अचानक किसीने रोकर कहा, दोहाई सरकारकी, मुख्तार साहब हम लोगनका हक नाहक मरवाये डारत हैं।

शर्माजी क्रोधसे कांपते हुए धम-धम कोठेसे उतर पड़े। यह दृढ़ सकल्प कर लिया कि मुख्तार साहबको मारे हटरोंके गिरा दूं, पर जन-सेवामें मनोवेगोंके दबानेकी बड़ी प्रबल शक्ति होती है। रास्ते हीमें सभल गये। मुख्तारको बुलाकर कहा, मुन्शीजी, आपने यह क्या गुलगपाड़ा मचा रखा है ?

मुख्तारने उत्तर दिया, हुजूर दारोगाजीने इन्हें एक डाकेकी तहकीकातमें तलब किया है।

शर्माजी बोले, जी हां, इस तहकीकातका अर्थ मैं समझता हूँ। घण्टेभरसे इसका तमाशा देख रहा हूँ। तहकीक हो चुकी या अभी कुछ कसर बाकी है?

मुख्तारने कहा, हुजूर, दारोगाजी जानें, मुझे क्या मतलब

दारोगाजी बड़े चतुर पुरुष थे। मुख्तार साहबकी बातों उन्होंने समझा था कि शर्माजीका स्वभाव भी अन्य जमींदारोंके सदृश है। इसीलिये वह बेखटके थे, पर इस समय उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। शर्माजीके तेवर देखे, नेत्रोंसे क्रोधाग्निकी ज्वाला निकल रही थी, शर्माजीकी शक्तिशालीनतासे भलीभांति परिचित थे। समीप आकर बोले, आपके इस मुख्तारने मुझे बड़ा धोखा दिया, वरना मैं हलफसे कहता हूँ कि यहां यह आग न लगती। आप मेरे मित्र बाबू कोकिला सिंहके मित्र हैं और इस नातेसे मैं आपको अपना मुरब्बी समझता हूँ, पर इस नामरदूद बद-माशने मुझे बड़ा चकमा दिया। मैं भी ऐसा अहमक था कि इसके चकरमें आ गया। मैं बहुत नादिम हूं कि हिमाकतके बाइस जनाबको इतनी तकलीफ हुई। मैं आपसे मुआफीका सायल हूँ। मेरी एक दोस्ताना इल्तमाश यह है कि जितनी जल्दी मुमकिन हो इस शख्सको बरतरफ कर दीजिये। यह आपकी रियासतको तबाह किये डालता है। अब मुझे भी इजाजत हो कि अपने मनहूस कदम यहांसे ले जाऊँ। मैं हलफसे कहता हूं कि मुझे आपको मुँह दिखाते शर्म आती है।

८

यहां तो यह घटना हो रही थी, उधर बाबूलाल अपने

चौपालमें बैठे हुए इनके सम्बन्धमे अपने कई असामियोंसे बातचीत कर रहे थे। शिवदीनने कहा, भैया, आप जाके दारोगाजीको काहे नाहीं समझावत हौ। राम राम! ऐसन अन्धेर।

बाबूलाल—भाई, मैं दूसरेके बीचमें बोलनेवाला कौन? शर्माजी तो वहीं है, वह आप ही बुद्धिमान हैं, जो उचित होगा करेंगे। यह आज कोई नई बात थोडे ही है। देखते तो हो कि आये दिन एक-न-एक उपद्रव मचा रहता है। मुख्तार साहबका इसमे भला होता है। शर्माजीसे मैं इस विषयमें इसलिये कुछ नहीं कहता कि शायद वे यह समझे कि मैं ईर्षावश शिकायत कर रहा हूं

रामदासने कहा, शर्माजी हैं और नीचु कोठापर बेचारनपर मार परत है। देखा नाहीं जात है। जिनसे मुराद पाय जात हैं उनका छोडे देत हैं। मोका तो जान परत है कि ई तहकिकात सहकिकात सब रुपैयनके खातिर कीन जात है।

बाबूलाल—और काहेके लिये की जाती है। दारोगाजी तो ऐसे ही शिकार ढूढा करते हैं लेकिन देख लेना शर्माजी अबकी मुख्तार साहबकी जरूर खबर लेंगे। यह ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं कि यह अन्धेर अपनी आखोसे देखें और मौन धारण कर लें? हां, यह तो बताओ, अबकी कितनी ऊख बोई है?

रामदास—ऊख बोये ढेर रहे मुदा दुष्टनके मारे बचै पावै। तू मानत नहीं हौ भैया पर आखन देखी बात है कि कराह-के-कराह रस जर गवा और छटांको भर माल न परा। न जानी अस कौन मन्तर मार देत है।

बाबूलाल—अच्छा, अबकी मेरे कहनेसे

देखू ऐसा कौन बडा सिद्ध है जो कराहीका रस बडा देता है जरूर इसमें कोई-न कोई बात है। इस गांवमें जितने कोल्हू जमीनमें गडे पडे हैं उनसे विदित होता है कि पहले यहा ऊख बहुत होती थी, किन्तु अब बेचारोंका मुँह भी मीठा नहीं होने पाता।

शिवदीन—अरे भैया! हमरे होसमें ई सब कोल्हू चलत रहे हैं। माघ-पूसमे रातभर गावमे मेला लगा रहत रहा, पर जबसे ई नासिनी बिद्या फैली है तबसे कोऊका ऊखके नेरे जायेका हियाव नाहीं परत है।

बाबूलाल—ईश्वर चाहेंगे तो फिर वैसी ही ऊख लगेगी। अबकी मैं इस मन्त्रको उलट दूगा। भला यह तो बताओ अगर ऊख लग जाय और माल पडे तो तुम्हारी पट्टीमें एक हजारका गुड हो जायगा?

हरखूने हँसकर कहा भैया, कैसी बात कहत हो—हजार तो पाच बीघामे मिल सकत है। हमरे पट्टीमें २५ बीघासे कम ऊख नहीं बा। कुछो न परै तौ अढाई हजार कहूँ नहीं गये हैं।

बाबूलाल—तब तो आशा है कि कोई पचास रुपये बयाईमें मिल जायेंगे। यह रुपये गांवकी सफाईमें खर्च होंगे।

इतनेमें एक युवा मनुष्य दौड़ता हुआ आया और बोला, भैया! ऊह तहाँ कात देखे गइल रहलीं। दरोगाजी सबका डांटत मारत रहे। देवी मुखिया बोला, हुज्जार साहब, हमका चाहे काट डारो मुदा हम एक कौड़ी न देबै। थाना कचहरी जहां कहो चलैके तैयार हई। ई सुनके हुजार लाल हुइ गयेन। चार

चौपालमें बैठे हुए इनके सम्बन्धमे अपने कई असामियोंसे बात-चीत कर रहे थे। शिवदीनने कहा, भैया, आप जाके दारोगाजी-को काहे नाहीं समझावत हो। राम राम! ऐसन अन्धेर।

बाबूलाल—भाई, मैं दूसरेके बीचमें बोलनेवाला कौन? शर्माजी तो वहीं है, वह आप ही बुद्धिमान हैं, जो उचित होगा करेंगे। यह आज कोई नई बात थोडे ही है। देखते तो हो कि आये दिन एक-न-एक उपद्रव मचा रहता है। मुख्तार साहबका इसमें भला होता है। शर्माजीसे मैं इस विषयमें इसलिये कुछ नहीं कहता कि शायद वे यह समझे कि मैं ईर्षावश शिकायत कर रहा हूँ

रामदासने कहा, शर्माजी हैं और नीचू कोठापर बेचारनपर मार परत है। देखा नाहीं जात है। जिनसे मुराद पाय जात हैं उनका छोडे देत हैं। मोका तो जान परत है कि ई तहकिकात सहकिकात सब रुपैयनके खातिर कीन जात है।

बाबूलाल—और काहेके लिये की जाती है। दारोगाजी तो ऐसे ही शिकार ढूढा करते हैं लेकिन देख लेना शर्माजी अबकी मुख्तार साहबकी जरूर खबर लेंगे। यह ऐसे वैसे आदमी नहीं है कि यह अन्धेर अपनी आखोंसे देखें और मौन धारण कर लें? हां, यह तो बताओ, अबकी कितनी ऊख बोई है?

रामदास—ऊख बोये ढेर रहे मुदा दुष्टनके मारे बचै पावै। तू मानत नहीं हो भैया पर आंखन देखी बात है कि कराह-क-कराह रस जर गया और छटाको भर माल न परा। न जानी ऊस कौन मन्तर मार देत हैं।

बाबूलाल—अच्छा, अबकी मेरे कहनेसे यह हानि उठा लो।

देखू ऐसा कौन बड़ा सिद्ध है जो कराहीका रस उड़ा देता है जरूर इसमें कोई-न कोई बात है। इस गांवमें जितने कोल्हू जमीनमें गड़े पड़े हैं उनसे विदित होता है कि पहले यहां ऊख बहुत होती थी, किन्तु अब बेचारोंका मुँह भी मीठा नहीं होने पाता।

शिवदीन—अरे भैया! हमरे होसमे ई सब कोल्हू चलत रहे हैं। माघ-पूसमें रातभर गावमें मेला लगा रहत रहा, पर जबसे ई नासिनी बिद्या फैली है तबसे कोऊका ऊखके नेरे जायेका हियाव नाहीं परत है।

बाबूलाल—ईश्वर चाहेंगे तो फिर वैसी ही ऊख लगेगी। अबकी मैं इस मन्त्रको उलट दूंगा। भला यह तो बताओ अगर ऊख लग जाय और माल पड़े तो तुम्हारी पट्टीमें एक हजारका गुड़ हो जायगा?

हरखूने हँसकर कहा भैया, कैसी बात कहत हो—हजार तो पांच बीघामें मिल सकत है। हमरे पट्टीमें २५ बीघासे कम ऊख नहीं बा। कुछो न परै तो अढ़ाई हजार कहूँ नहीं गये हैं।

बाबूलाल—तब तो आशा है कि कोई पचास रुपए बयाईके मिल जायँगे। यह रुपये गांवकी सफाईमें खर्च होंगे।

इतनेमें एक युवा मनुष्य दौड़ता हुआ आया और बोला, भैया! ऊह तहकिकात देखे गइल रहलीं। दरोगाजी सबका डांटत मारत रहे। देवी मुखिया बोला, मुख्तार साहब, हमका चाहे काट डारो मुदा हम एक कौड़ी न देबै। थाना कचहरी जहां कहो चलैके तैयार हई। ई सुनके मुख्तार लाल हुइ गयेन। दर

से कभी गांवकी यह दशा इस भयसे न कहता था कि शायद आप समझें कि मैं ईर्षाके कारण ऐसा कहता हूँ। यहां यह कोई नयी बात नहीं है। आये दिन ऐसी ही घटनाएं होती रहती हैं। और कुछ इसी गांवमें नहीं, जिस गावको देखिये, यही दशा है। इन सब आपत्तियोंका एकमात्र कारण यह है कि देहातोंमें कर्म-परायण, विद्वान और नीतिज्ञ मनुष्योंका अभाव है। शहरके सुशिक्षित जमींदार जिनसे उपकारकी बहुत कुछ आशा की जाती है, सारा काम कारिन्दोंपर छोड देते हैं। रहे देहातके जमींदार, सो निरक्षर भट्टाचार्य हैं। अगर कुछ थोडे-बहुत पढे भी हैं तो अच्छी सगति न मिलनेके कारण उनमें बुद्धिका विकास नहीं है। कानूनके थोडेसे दफे सुन-सुना लिये हैं, बस उसीकी रट लगाया करते हैं। मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मुझे जरा भी खबर होती तो मैं आपको सचेत कर दिये होता।

शर्माजी—खैर, यह बला तो टली, पर मैं देखता हूँ कि इस ढङ्गसे काम न चलेगा। अपने असामियोंको आज इस विपत्तिमें देखकर मुझे बड़ा दु ख हुआ। मेरा मन बार-बार मुझको इस सारी दुर्घटनाओंका उत्तरदाता ठहराता है। जिसकी कमाई खाता हूँ जिनकी बदौलत टमटमपर सवार होकर रईस बना घूमता हूँ, उनके कुछ स्वत्व भी तो मुझपर हैं। मुझे अब अपनी स्वार्थान्धता स्पष्ट दीख पड़ती है। मैं आप अपनी ही दृष्टिमें गिर गया हूं। मैं सारी जातिके उद्धारका बीड़ा उठाये हुए हूँ, सारे भारत वर्षके लिये प्राण देता फिरता हूँ, पर अपने घरकी खबर ही नहीं। जिनकी रोटियां खाता हूँ उनकी तरफसे इस तरह उदासीन

हू। अब इस दुरवस्थाको समूल नष्ट करना चाहता हूँ। इस काममें मुझे आपकी सहायता और सहानुभूतिकी जरूरत है। मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं याचक भावसे आपके पास आया हूँ। इस भारको सँभालनेकी शक्ति मुझमे नहीं। मेरी शिक्षाने मुझे किताबोंका कीडा बनाकर छोड दिया और मनके मोदक खाना सिखाया। मैं मनुष्य नहीं, किन्तु नियमोंका पोथा हूं। आप मुझे मनुष्य बनाइये, मैं अब यहीं रहूँगा, पर आपको भी यहीं रहना पडेगा। आपकी जो हानि होगी उसका भार मुझपर है। मुझे सार्थक जीवनका पाठ पढ़ाइये। आपसे अच्छा गुरु मुझे न मिलेगा। सम्भव है कि आपका अनुगामी बनकर मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने योग्य हो जाऊँ।

परीक्षा

१

जब रियासत देवगढ़के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्माकी याद आयी। जाकर महाराजसे विनय की कि दीनबन्धु! दासने श्रीमान्‌की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज सँभालनेकी शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापेमें दाग लगे। सारी जिन्दगीकी नेकनामी मिट्टीमें मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवानका बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहबने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर, शर्त यह लगा दी कि रियासतके लिये नया दीवान आप हीको खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रोंमें यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़के लिये एक सुयोग्य दीवानकी जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पदके योग्य समझें वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंहकी सेवामें उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्निके मरीज–

हू। अब इस दुरवस्थाको समूल नष्ट करना चाहता हूँ। इस काममें मुझे आपकी सहायता और सहानुभूतिकी जरूरत है। मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं याचक भावसे आपके पास आया हूँ। इस भारको सँभालनेकी शक्ति मुझमें नहीं। मेरी शिक्षाने मुझे किताबोंका कीड़ा बनाकर छोड़ दिया और मनके मोदक खाना सिखाया। मैं मनुष्य नहीं, किन्तु नियमोंका पोथा हू। आप मुझे मनुष्य बनाइये, मैं अब यहीं रहूँगा, पर आपको भी यहीं रहना पड़ेगा। आपकी जो हानि होगी उसका भार मुझपर है। मुझे सार्थक जीवनका पाठ पढ़ाइये। आपसे अच्छा गुरु मुझे न मिलेगा। सम्भव है कि आपका अनुगामी बनकर मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने योग्य हो जाऊँ।

परीक्षा

१

जब रियासत देवगढ़के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्माकी याद आयी। जाकर महाराजसे विनय की कि दीनबन्धु ! दासने श्रीमान्‌की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज सँभालनेकी शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापेमें दाग लगे। सारी जिन्दगीकी नेकनामी मिट्टीमें मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवानका बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहबने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर, शर्त यह लगा दी कि रियासतके लिये नया दीवान आप हीको खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रोंमें यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़के लिये एक सुयोग्य दीवानकी जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पदके योग्य समझें वे वर्त्तमान दीवान सरदार सुजानसिंहकी सेवामें उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्निके मरीज-

हू। अब इस दुरवस्थाको समूल नष्ट करना चाहता हूँ। इस काममें मुझे आपकी सहायता और महानुभूतिकी जरूरत है। मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं याचक भावसे आपके पास आया हूँ। इस भारको सँभालनेकी शक्ति मुझमें नहीं। मेरी शिक्षाने मुझे किताबोंका कीड़ा बनाकर छोड़ दिया और मनके मोदक खाना सिखाया। मैं मनुष्य नहीं, किन्तु नियमोंका पोथा हू। आप मुझे मनुष्य बनाइये, मैं अब यहीं रहूँगा, पर आपको भी यहीं रहना पड़ेगा। आपकी जो हानि होगी उसका भार मुझपर है। मुझे सार्थक जीवनका पाठ पढ़ाइये। आपसे अच्छा गुरु मुझे न मिलेगा। सम्भव है कि आपका अनुगामी बनकर मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने योग्य हो जाऊँ।

परीक्षा

१

जब रियासत देवगढके दीवान सरदार सुजानसिंह बूढे हुए तो परमात्माकी याद आयी। जाकर महाराजसे विनय की कि दीनबन्धु ! दासने श्रीमान्‌की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज सभालनेकी शक्ति नहीं रही। कहीं भूल चूक हो जाय तो बुढ़ापेमें दाग लगे। सारी जिन्दगीकी नेकनामी मिट्टीमे मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवानका बडा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहबने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर, शर्त यह लगा दी कि रियासतके लिये नया दीवान आप हीको खोजना पडेगा।

दूसरे दिन देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रोंमें यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़के लिये एक सुयोग्य दीवानकी जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पदके योग्य समझें वे वर्त्तमान दीवान सरदार सुजानसिंहकी सेवामें उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्निके मरीज–

हू। अब इस दुरवस्थाको समूल नष्ट करना चाहता हूँ। इस काममें मुझे आपकी सहायता और सहानुभूतिकी जरूरत है। मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं याचक भावसे आपके पास आया हूँ। इस भारको सँभालनेकी शक्ति मुझमें नहीं। मेरी शिक्षाने मुझे किताबोंका कीड़ा बनाकर छोड़ दिया और मनके मोदक खाना सिखाया। मैं मनुष्य नहीं, किन्तु नियमोंका पोथा हू। आप मुझे मनुष्य बनाइये, मैं अब यहीं रहूँगा, पर आपको भी यहीं रहना पड़ेगा। आपकी जो हानि होगी उसका भार मुझपर है। मुझे सार्थक जीवनका पाठ पढ़ाइये। आपसे अच्छा गुरु मुझे न मिलेगा। सम्भव है कि आपका अनुगामी बनकर मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने योग्य हो जाऊँ।



१

जब रियासत देवगढ़के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढे हुए तो परमात्माकी याद आयी। जाकर महाराजसे विनय की कि दीनबन्धु ! दासने श्रीमान्‌की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज सभालनेकी शक्ति नही रही। कहीं भूल चूक हो जाय तो बुढापेमें दाग लगे। सारी जिन्दगीकी नेकनामी मिट्टीमें मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवानका बडा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहबने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर, शर्त यह लगा दी कि रियासतके लिये नया दीवान आप हीको खोजना पडेगा।

दूसरे दिन देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रोंमें यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़के लिये एक सुयोग्य दीवानकी जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पदके योग्य समझें वे वर्त्तमान दीवान सरदार सुजानसिंहकी सेवामें उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्निके

को यहांतक कष्ट उठानेकी कोई जरूरत नहीं, एक महीने तक उम्मीदवारोंकी रहन सहन, आचार-विचारकी देख-भाल की जायगी, विद्याका कम, परन्तु कर्त्तव्यका अधिक विचार किया जायगा। जो महाशय इस परीक्षामें पूरे उतरेंगे वे इस उच्च पदपर सुशोभित होंगे।

२

इस विज्ञापनने सारे मुल्कमें हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकारकी कैद नहीं ? केवल नसीबका खेल है। सैकडों आदमी अपना-अपना भाग्य परखनेके लिये चल खडे हुए। देवगढमें नये-नये और रग बिरगके मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाडीसे उम्मीदवारोंका एक मेला सा उतरता। कोई पजावसे चला आता था, कोई मद्राससे, कोई नये फैशनका प्रेमी, कोई पुरानी सादगीपर मिटा हुआ। पण्डितों और मौलवियोंको भी अपने-अपने भाग्यकी परीक्षा करनेका अवसर मिला। बेचारे सनदके नामको रोया करते थे, यहां उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रगीन एमामे, चोगे और नाना प्रकारके अङ्गरखे और कन्टोप देवगढमें अपनी सजधज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष सख्या ग्रेजुएटोंकी थी, क्योंकि सनदकी कैद न होनेपर भी सनदसे परदा तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंहने इन महानुभावोंके आदर-सत्कारका बडा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कामरोंमें बैठे हुए रोजेदार मुसल्मानोंकी तरह महीनेके दिन गिना करते थे। हरएक मनुष्य अपने जीवनको अपनी बुद्धिके अनुसार अच्छे रूपमें

दिखानेकी कोशिश करता था। मिस्टर "अ" नौ बजे दिनतक सोया करते थे, आजकल वे बगीचेमें टहलते हुए ऊषाका दर्शन करते थे। मि० "ब" को हुक्का पीनेकी लत थी, पर आजकल बहुत रात गये किवाड़ बन्द करके अन्धेरेमें सिगार पीते थे। मिस्टर "द"—"स" और "ज" से उनके घरोंपर नौकरोंकी नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल "आप और जनाब" के बगैर नौकरोंसे बात चीत नहीं करते थे। महाशय "क" नास्तिक थे, हक्सलेके उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिरके पूजारीको पदच्युत हो जानेकी शङ्का लगी रहती थी। मिस्टर "ल" को किताबोंसे घृणा थी परन्तु आजकल वे बड़े बड़े ग्रन्थ देखनेमें पढ़नेमें डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिये, वह नम्रता और सदाचारका देवता बना मालूम देता था। शर्माजी घड़ी रातसे ही वेद मन्त्र पढ़ने लगते थे और मौलवी साहबको तो नमाज और तलावतके सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीनेका झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्योंका वह बूढ़ा जौहरी आड़में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलोंमें हंस कहां छिपा हुआ है?

३

एक दिन नये फैशनवालोंको सूझी कि आपसमें "हाकी" का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हाकीके मजे हुए खिलाड़ियोंने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। सम्भव है, कुछ हाथोंकी सफाई ही काम कर जाय। चलिये